सुभौम चक्रवर्ती चरित्र

पुण्यार्जक श्रावक

आद्य मिताक्षर

—आचार्य वसुनन्दी मुनि

इस हुण्डावसर्पिणी काल के चतुर्थ काल में हुए त्रेसठ शलाका के महापुरुषों (24 तीर्थंकर + 12 चक्रवर्ती + 9 नारायण +9 प्रतिनारायण) के पावन चरित्र व उससे सम्बन्धित पुरुषों की मंगलदायी कथायें प्रथमानुयोग के शास्त्रों में वर्णित हैं। उनका वह पावन या पावनता की प्रेरणा देने वाला, संसार, शरीर व भोगों से वैराग्योत्पादक, पाप पंक से मुक्त करने वाला जीवन चरित्र मोक्ष मार्गी को मोक्षमार्ग में चलने हेतु वैसाखी के समान सम्बल का काम करता है। उन्हीं पवित्र पुराण व चरित्र ग्रंथों में से अष्टम चक्रवती (श्री सुभौम चक्रवर्ती) का जीवन चरित्र इस ग्रंथ में वर्णित है। णमोकार मंत्र का अपमान करने का, विषयों में आसक्ति होने का, पुण्य-पाप का प्रत्यक्ष फल बताने वाला सरल एवं पापों से भयभीत कर धर्म का प्रेरणा देने वाला प्रबल निमित्त कारण है। और यह भी ध्रुव सत्य व शाश्वत जिन सिद्धान्त है कि ''बिना निमित्त के संसार से कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। इस ग्रन्थ की विषय वस्तु संक्षेप में इस प्रकार है।

प्रथम सर्ग में:- सुभौम चक्रवर्ती के पूर्वभवों का वर्णन करते हुए भूपाल राजा के अभियान की कथा, अभिमानी जितशत्रु की कथा श्री दत्त सेठ के मानापमान का भी सुन्दर चित्रण किया है। मान अधोगति का कारण है, यह मान कषाय सर्वाधिक मनुष्य गति में पाई जाती है, इसे नीतिकारों व कवियों ने विष के समान आत्म घातक कहा है यथा-

मान माह विष रूप, करहि नीच गति जगत में।

कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्राणी सदा।।

(दशलक्षण पूजा कविवर द्यानतराय कृत)

आगे जितशत्रु, श्रीदत्त व भूपाल राजा के वैराग्य, दीक्षा व कठिनतम तपश्चर्या का एवं निदान बंध करके देव अवस्था की प्राप्ति का कथन किया गया है। भूपाल के जीव के द्वारा देव आयु को पूर्ण करके इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत

क्षेत्रस्थ कौशल देश की साकेत नगरी में राजा सहस्र बाहु व रानी चित्रमयी के यहाँ अवतरित होने का कथन किया गया है।

द्वितीय सर्ग में:- परशुराम व सहस्रबाहु के भतीजे जमदग्नि की तपस्या के कथनोपरान्त सम्यग्दृष्टि राजा दृढ़ग्राही एवं मिथ्यादृष्टि हरिवर्मा ब्राह्मण की कथा तथा दोनों मरणोपरांत देव होकर जैन धर्म व मिथ्याधर्म की परीक्षा करने का भी सुन्दरतम विवेचन किया है।

तृतीय सर्ग में:- जमदग्नि का तपोभ्रष्ट होना, रेणुका के भाई अरिंजय मुनि द्वारा रेणुका को सम्यग्दर्शन व व्रतादि का उपदेश दे व्रत ग्रहण कराना, मुनिराज द्वारा कामधेनु गाय व उन्हें उत्तमोत्तम भोजन कराना एवं कृत वीर के द्वारा कामधेनु गाय के मांगने पर जमदग्नि द्वारा नहीं देना, तब कृतवीर द्वारा जमदग्नि को मारकर कामधेनु का अपहरण करना। परशुराम व इन्द्रराम द्वारा सहस्रबाहु व कृतवीर को मार देना। लोभी सहस्रबाहु व कृतवीर ने जो जमदग्नि के साथ किया अपने उस किये का उन्हें भी वैसा ही फल मिल गया, यह लोभ सर्व पापों का बीज है, इसीलिए इसे पाप का बाप कहा जाता है, इन सबका इसमें वर्णन किया गया है।

चतुर्थ सर्ग में:- परशुराम के द्वारा सहस्रबाहु के राज्य को ब्राह्मणों को देना, शांडिल्य के द्वारा सहस्रबाहु की गर्भवती पत्नी चित्रमती की सिद्धार्थ मुनिराज के पास भेजकर सुरक्षा करना, चित्रमयी की कुक्षि से सुभौम का जन्म, मुनिराज द्वारा पूर्व भवों का व निदान का वर्णन करना, व्यंतर देव द्वारा सुभौम की सहायता करना एवं सुभौम के द्वारा परशुराम व इन्द्रराम की मृत्यु का कथन एवं सुभौम को चक्ररत्न की प्राप्ति होना, इस सभी का इस सर्ग में यथोचित् रीति से कथन किया गया है।

पंचम सर्ग में:- सुभौम चक्रवर्ती की दिग्विजय यात्रा, 32 हजार मुकुटबद्ध राजाओं को जीतना, चौदह रत्न व नवनिधियों का कथन, षट्खण्ड विजय का कथन एवं सगर चक्रवर्ती की कथा का वर्णन भी किया गया है जो संसार, शरीर व भोगों से विरक्ति की शुभ प्रेरणा देने वाली है।

षष्टम सर्ग में:- सुभौम चक्रवर्ती के अमृत रसायन नामक रसोईया का वर्णन, अमृत रसायन रसोईया को दण्ड देना, अमृत रसायन का तापस हो जाना एवं मरकर ज्योतिषी देव बन जाने का कथन किया है, किन्हीं ग्रंथों में क्षुधातुरराजा सुभौम चक्रवर्ती को अमृत रसायन रसोईये द्वारा गर्म गर्म खीर परोस देने जिसके खाने से राजा का कुपित हो उसी थाली से मार देने एवं मरकर देव होना ऐसा कथन है। ज्योतिषी देव द्वारा वृद्ध का भेष बनाकर आना एवं राजा सुभौम चक्रवर्ती को सुमधुर फल देना, राजा के द्वारा और फल मांगने पर राजा से उद्यान में चलने को कहना, रसना इंद्रिय में आसक्त राजा का उसके साथ चले जाना। इसी के साथ-साथ इसमें कुकर्दम की कथा का भी रोचक वर्ण किया है, विषयासक्ति निःसंदेह दुर्गति व अनेक दुःखों को देने वाली है, एक एक इन्द्रिय के विषय में आसक्त हो गज, मीन, अलि, पतंग, मृग या सर्पादि जीव दारुण दुःखों को प्राप्त करते हैं।

सप्तम सर्ग में:- सुभौम चक्रवर्ती ज्योतिषी देव के साथ चला जाता है, पापोदय से चक्रवर्ती की विभूति नष्ट हो जाती है देव पूर्वभव का परिचय देकर राजा को मारने का प्रयास करता है, किन्तु सुभौम चक्रवर्ती महामंत्र णमोकार मंत्र का जाप करता है जिससे ज्योतिषी देव सफल नहीं हो सका, जब समुद्र के मध्य नव में बैठा सुभौम चक्रवर्ती ज्योतिषी देव द्वारा चलाये आँधी-तूफान से भयभीत होता है तब ज्योतिषी देव ने छल से णमोकार महामंत्र को पानी पर लिखवाकर चक्रवर्ती का पुण्य क्षीण हो गया तथा ज्योतिषी देव ने उसे मार दिया, सुभौम चक्रवर्ती मरकर नरक पहुँचा। आगे यह सुभौम चक्रवर्ती चतुर्थ भव में तीर्थंकर होगा इसका कथन किया है।

भट्टारक रत्नचन्द्र विरचित सुभौम चक्रवर्ती की कथा कहने वाला यह अद्वितीय जीवन चरित्र है। इस ग्रंथ में कुल (121+121+130+124+135+93+77+11+8+2=822) श्लोक वा आर्या छंद हैं। यह ग्रंथ णमोकार मंत्र के महात्म्य को एवं उसके अपमान के फल को प्रकाशित करने वाला है, प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी के लिए अत्यंत उपयोगी ग्रंथ है।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी संघस्थ समस्त साधुवृन्दों एवं त्यागी-व्रतियों को आशीर्वाद, प्रकाशक निर्ग्रंथ ग्रंथमाला, मुद्रक श्रीवसु प्रकाशन एवं पुण्यार्जक सुधी श्रावक को धर्मवृद्धि आशीर्वाद।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ मंद बुद्धि अल्पज्ञ द्वारा जो त्रुटि रह गयी हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए संकेत भेजने का कष्ट करें जिससे आगामी प्रकाशन में संशोधन किया जा सके। सुधी पाठकगण गुण ग्राहक दृष्टि बनाकर, विशुद्ध भावों से युक्त हों।

विनय पूर्वक आत्म कल्याण के लिए स्वाध्याय करें, यह स्वाध्याय मन को स्थिर करने का हेतु एवं अतंरंग तप है।

''अलमति विस्तरेण''

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः

24.04.16

भट्टारक श्री रत्नचन्द्र जी विरचित

सुभौम-चक्रवर्ती-चरित्र

प्रथम सर्ग

सुभौम गर्भावतरण वर्णन

जो भगवान अरनाथ स्वामी अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी हैं, तीनों जगत के स्वामी हैं, जो भव्य जीवों को संसार से पार कर देने के लिए निमित्त कारण हैं और जिन्हें अनन्त चतुष्टय प्राप्त हो चुका है ऐसे श्री अरनाथ भगवान अठारहवें तीर्थंकर की सेवा करो।।1।।

जो समस्त पापों को नाश कर देने वाले हैं और अत्यन्त कठिन तथा विषम ऐसे एकांतरूपी अंधकार को नाश करने के लिए जो सूर्य के समान हैं ऐसे अन्य तेईस तीर्थंकर भी हम लोगों के समस्त कार्यों की सिद्धि करें।।2।।

जो श्री सिद्ध भगवान् कभी न नाश होने वाले सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन आदि आठों गुणों में तल्लीन हैं, जिन्होंने अपने आत्मा का स्वभाव सिद्ध कर लिया है, जो तीनों लोकों के शिखर पर विराजमान हैं और जो सदा उदयरूप बने रहते हैं अर्थात् जिनका ज्ञान रूपी समस्त पदार्थों को और उनकी तीनों काल सम्बन्धी पर्यायों को प्रति समय जानता रहता है ऐसे श्री सिद्ध भगवान हम लोगों की रक्षा करें।।3।।

जो आचार्य परमेष्ठी धारण किये हुए अनेक गुणरूपी रत्नों से सुशोभित हैं, समस्त भव्यजीवों को आनन्द देने वाले हैं और मन तथा पाँचों इन्द्रियों को जीतने वाले हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी की भी सदा सेवा करते रहना चाहिए।।4।।

जो उपाध्याय परमेष्ठी ग्यारह अंगों के जानकार हैं और स्याद्वाद वा अनेकान्तवाद को कथन करने वाली उत्तम विद्यारूपी नदियों के समुद्र हैं ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी की भी मैं सदा स्तुति करता हूँ।।5।।

जिनसे अनेक भव्यजीवों की मोक्ष प्राप्त करने रूप इच्छाएँ पूर्ण हुईं हैं, जिन्हें अनेक साधु मुनिराज आ आकर नमस्कार करते हैं और जो मुक्ति रूपी ललना

के साथ समागम करने के लिए तत्पर हैं। ऐसे श्री साधु परमेष्ठी हम लोगों के जन्म मरणरूपी संसार के दुःखों को दूर करें।।6।।

निगोदिया तथा अन्य एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, तीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि जीव-समूहों के उपकार करने में सदा तत्पर रहने वाली और अनेकान्तरूपी अमृत को धारण करने वाली ऐसी सरस्वती देवी को भी मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।।7।।

जिनका शरीर स्फुरायमान या प्रगट हुई सातों प्रकार की ऋद्धियों से दैदीप्यमान है और मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान इन चारों-ज्ञानों से सुशोभित हैं ऐसे श्री वृषभसेन को आदि लेकर गौतम पर्यंत होने वाले चौबीस तीर्थंकरों के समस्त गणधरों को मैं नमस्कार करता हूँ।।8।।

जिन्होंने अपने ध्यानरूपी गर्मी से महापापरूपी ठंडी को भी नाश कर दिया है ऐसे श्री कुन्दकुन्द आदि गुरु तथा अनेक गुणों की खानि ऐसे श्री गुणचन्द्र आदि गुरु मेरे सब कार्यों की सिद्धि करो।।9।।

मैं श्री रत्नकीर्ति को नमस्कार करता हूँ। श्री यशकीर्ति को नमस्कार करता हूँ। श्री गुणचन्द्र को नमस्कार करता हूँ और श्री जिनचन्द्र को नमस्कार करता हूँ।।10।।

इस प्रकार जो कार्य प्रारम्भ किया है उसको पूर्ण करने के लिए मैंने यह उत्तम मंगलाचरण किया। अब मैं पुराण रूपी समुद्र में से निकालकर इस चरित्र की रचना प्रारम्भ करता हूँ।।11।।

परशुराम से सम्बन्ध रखने वाले महाराज सुभौम चक्रवर्ती श्री अरनाथ अट्ठाहरवें तीर्थंकर के समय में उत्पन्न हुए थे। ऐसे उन्हीं सुभौम चक्रवर्ती का उत्तम चरित्र मैं वर्णन करता हूँ।।12।।

जिस प्रकार मुनिराज श्री गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक के लिए वर्णन किया था उसी प्रकार गुरु परंपरा से चले आये इस चरित्र को मैं वर्णन करता हूँ।।13।।

त्रेसठ श्लाका पुरुषों में से किसी एक की भी कथा सुनने से करोड़ों भवों में उत्पन्न हुए पाप दूर से ही नष्ट हो जाते हैं।।14।।

अथानन्तर- इसी भरत क्षेत्र के मगध नाम के देश में एक राजगृह नगर है जो कि इन्द्र के नगर के समान शोभायमान हैं। उसमें राजा श्रेणिक राज्य करते थे। वे राजा श्रेणिक जैनधर्म में प्रसिद्ध थे। सम्यग्दर्शन से उनकी आत्मा पवित्र थी और उनका जीव आगामी उत्सपिर्णी के तीसरे काल में तीर्थंकर होने वाला था।।15-16।।

किसी एक दिन वन का माली सब ऋतुओं के खिले हुए फूल और पके फल राजा श्रेणिक के पास लाया। उनको देखकर ही राजा श्रेणिक ने समझ लिया कि भगवान महावीर स्वामी विपुलाचल पर्वत पर आकर विराजमान हुए हैं। वह बड़े आनन्द के साथ उठा (उसने उनको नमस्कार किया) और भव्य जीवों को साथ ले चलने के लिए उसने आनन्द भेरी बजवाई। तदनन्तर वह राजा श्रेणिक रानी चेलना के साथ-साथ पूजा की सब साम्रगी लेकर भगवान महावीर स्वामी के दर्शन करने के लिए चला।।17-18।।

दूर से ही मानस्तम्भों को देखकर वह अपनी सवारी से उतरा। उसने गुण समूहों आदि राजचिन्ह भी सब दूर कर दिये और सरोवर वन आदि की शोभा देखता हुआ चला।।19।।

मार्ग से उसने महावीर स्वामी को बार-बार नमस्कार किया, उनके गुण समूहों को सुना। इस प्रकार वह राजा श्रेणिक विपुलाचल पर्वत के शिखर पर जा चढ़ा।।20।।

समवशरण में जाकर भगवान महावीर स्वामी की, पूजा भेंट समर्पण की और फिर मनुष्यों के कोठे में बैठकर जन्म मरण और बुढ़ापे को दूर करने वाले शुद्ध धर्मामृत का पान किया।।21।।

तदन्तर वह वहाँ से भी उठा और अवधि मनःपर्याय आदि ज्ञानरूपी नेत्रों को धारण करने वाले भगवान गौतम गणधर जहाँ विराजमान थे उनके समीप पहुँचा। वहाँ जाकर भगवान गौतम स्वामी की स्तुति की व बड़ी विनय के साथ हाथ जोड़े। निवेदन किया कि हे भगवान् ! यद्यपि आपके प्रभाव से हमारे शास्त्र

संबंधी संदेह सब दूर हो गये हैं तथापि हमें महाराज सुभौम चक्रवर्ती का चरित्र सुनाकर कृतार्थ कीजिए।।22-23।।

इसी प्रकार राजा श्रेणिक के प्रश्न को सुनकर अपनी फैली हुई वाणी से भव्य जीवों के समस्त पाप समूहों को नाश करने वाले भगवान गौतम गणधर स्वामी कहने लगे।।24।।

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में एक रत्नसंचयपुर नगर है जो कि बहुमूल्य मणि और मणियों से भरा हुआ है।।25।।

उस नगर में भूपाल नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा ही अभिमानी था, भोगोपभोगी से परिपूर्ण था और शत्रुओं का नाश करने वाला पराक्रमी था।।26।।

उसके राज्य में एक मेघसिंह नाम का एक हाथी था उसे अनेक राजाओं ने मांगा था परन्तु राजा भूपाल ने वह हाथी किसी को भी नहीं दिया था। क्योंकि वह राजा भूपाल बड़ा ही प्रतापी था।।27।।

मांगने पर न देने पर उन राजाओं का मानभंग हुआ और इसलिए वे क्रोध से उन्मत्त होकर राजा भूपाल से युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। वे सब अपनी सेना लेकर रत्नसंचय नगर पर चढ़ आये और बड़ा भारी युद्ध करने लगे।।28।।

वह युद्ध बड़ा ही भयंकर हुआ था और उसमें अनेक शूरवीर योद्धा मारे गये थे। देवयोग में उस युद्ध में राजा भूपाल की हार हुई। सो ठीक है भला अभिमान किसका स्थिर रह सकता है?।।29।।

हार जाने पर वह राजा भूपाल विचार करने लगा कि इस राज्य को और इस ऐश्वर्य को धिक्कार है जो नित्य होकर भी (सदा से चला आया भी) आधे ही क्षण देखते ही देखते नष्ट हो जाता है। ऐसे ही राज्य व ऐश्वर्य को पाकर जीवों के अभिमान का उदय होता है।।30।।

जो सुख न जाने कितने काल से इकट्ठा किया गया था वही सुख मानभंग होने के कारण करोड़ों गुणा दुःख में परिणत हो जाता है। और फिर उन्हीं मूर्ख प्राणियों के द्वारा वही करोड़गुणा दुःख भोगना पड़ता है।।31।।

मान भंग होने के कारण राजा भूपाल को वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगा कि यदि वास्तव में देखा जाये तो इस संसार में कोई भी पदार्थ नित्य नहीं है।।32।।

इस संसार में केवल मेरा ही मान भंग नहीं हुआ है किन्तु पहले अनेक राजाओं का मान भंग हो चुका है। महाप्रतापी राजा भरत का भी बाहुबली द्वारा मान भंग हुआ था।।33।।

पहले समय में ऐसे-ऐसे अनेक राजा शक्तिशाली और अभिमानी थे उनका भी मान भंग हुआ था फिर भला उनके सामने मैं क्या चीज हूँ।।34।।

किसी एक समय इसी भरतक्षेत्र में दर्शाण देश के दशपुर नाम के नगर में राजा जितशत्रु राज्य करता था, उसका वह राज्यों के सात अंगों से, सब सिद्धियों से और संधि विग्रह आदि छहों गुणों से भरपूर था।।35।।

किसी एक दिन वह राजा जितशत्रु अपने मन में विचार करने लगा कि इस संसार में मुझसे अधिक बलवान और कोई नहीं है। इसी अभिमान के उदय से वह मदोन्मत्त हो गया और अपनी सब सेना को लेकर दिग्विजय करने के लिए चल पड़ा।।36।।

जिस समय वह राजा दिग्विजय करने के लिए तैयार हुआ था, उस समय उसकी सेना के मनुष्यों के बोझ से शेषनाग कच्छप के समान हो गये था और कच्छप शेषनाग के समान हो गया था।।37।।

किसी के वश न होने वाले उस राजा जितशत्रु ने सब शत्रुओं के साथ दुर्जय युद्ध किया, सबको कर देने वाला बनाया और इस प्रकार सब शूरवीर शत्रुओं को भी अपने वश में कर लिया।।38।।

सबके स्वामी उस राजा जितशत्रु ने उन जीते हुए सब राजाओं से मणि, मोती, कन्यारत्न आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ सब भेंट में ग्रहण किये।।39।।

इस प्रकार सब राजाओं को तथा किसी से भी न जीते जा सकें ऐसे विद्याधरों को भी जीतकर उस राजा जितशत्रु ने धर्म के प्रभाव से महामण्डलीक का उत्तम पद प्राप्त किया।।40।।

उस राजा शत्रु ने उस दिग्विजय से लौटकर भूतानन्द नाम के वन में एक सरोवर के किनारे डेरा डाला और अनेक प्रकार के बने हुए कपड़ों के डेरों में विश्राम किया।।41।।

वहाँ पर उसकी सेना सब दिशाओं में से चारों ओर फैली हुई थीं उसके विस्तार को देखकर राजा को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वह अपने हृदय में इस प्रकार विचार करने लगा कि इस संसार में इस पृथ्वी पर ऐसा कोई धनवान नहीं है कि जो मेरी सेना के सब मनुष्यों के लिए अन्न देकर और सब पशुओं को घास देकर सब सेना के साथ मेरा आदर सत्कार व निमंत्रण कर सके।।42-43।।

जिस समय वह राजा जितशत्रु अपने हृदय में इस प्रकार अभिमान कर रहा था उसी समय देवयोग से उस राजा के अभिमान को भंग करने के लिए तैयार हुई बहुत सी चींटियाँ अपने पृथ्वी के भीतर बने हुए घर से बाहर निकली।।44।।

उसी समय उस राजा को आकाश में एक शब्द सुनाई दिया जिसमें कहा गया था कि "हे राजन! हम चींटियाँ तेरी सब सेना के साथ तेरा निमंत्रण करने के लिए एक पंक्ति बाँधकर ठहरी हुई है।।45।।

राजा जितशत्रु उस शब्द को सुनकर अपने हृदय में बड़ा ही आश्चर्य करने लगा और सोचने लगा कि ये चींटियाँ हम लोगों को अन्न घास आदि भोजन की सामग्री किस प्रकार दे सकती है?।।46।।

परन्तु उन चींटियों ने बड़े आदर के साथ उनका निमंत्रण किया था। इसलिए वह सब सेना उन चींटियों के पीछे-पीछे हो ली। और चलते-चलते अनेक दुष्ट जीवों से भरे हुए एक निर्जन और सघन वन में पहुँची।।47।।

उस वन में जाकर सबने देखा कि कोई बाबड़ी घी से भरी है, कोई चावलों से भरी है, कोई अन्न से भरी है और कोई गुड़ आदि अन्य पदार्थों से भरी है।।48।।

उस सेना ने वह घी गुड़ अन्न चावल आदि सब पदार्थों को खर्च करना प्रारम्भ कर दिया परन्तु वे सब उस सामान का एक भाग भी खर्च न कर सके। इस बात को देखकर राजा जितशत्रु को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वह विचार करने लगा कि यह क्या बात है। (यहाँ निर्जन वन में इतनी सामग्री कहाँ से आई?)।।49।।

उसी समय उसका अभिमान चूर करने के लिये आकाश में देववाणी हुई और उसमें कहा गया कि "यहाँ तेरे ही समान कोई एक राजा सब देशों को जीतकर आया था। उसके हाथी घोड़े आदि सेना के भोजनों की सामग्री के लिए जो घी गुड़ आदि पदार्थ लाये गये थे और उनकी उच्छिट (झूठन) जो पृथ्वी पर गिर गई थी उसी झूठने में से इन चींटियों ने अपने मुख से ला लाकर यह सब सामग्री एकत्रित की है।" ।।50-51।।

इस देववाणी को सुनकर उस राजा जितशत्रु को मान भंग हो गया। उसका हृदय पश्चाताप की चोट से दब गया और विचार करने लगा कि जिस राजा की इतनी बड़ी विभूति थी, जिसकी इतनी सामग्री थी, वह भी इस काल से नष्ट हो गया सो ठीक ही है। क्योंकि जिस अग्नि से बड़े-बड़े अचल पर्वत भी भस्म हो जाते हैं उस अग्नि के सामने घास के ढेर भला कितनी देर तक ठहर सकते हैं।।52-53।।

अपने हृदय में यही विचार कर उस राजा जितशत्रु ने अपने योग्य पुत्र को राज्य दिया, स्वयं गुरु के समीप जाकर दीक्षा ग्रहण की और तपकर स्वर्ग प्राप्त किया।।54।।

मानभंग से अन्तरंग में दुःखी हुआ वह राजा भूपाल और भी एक कथा का विचार करने लगा सो ठीक है क्योंकि जब यह जीव किसी सुख अथवा दुःख में निमग्न होता है तब उसका स्मरण भी वैसा ही हो जाता है।।55।।

वह राजा भूपाल विचार करने लगा कि ''कश्मीर देश के पद्माकर नाम के उत्तर नगर में एक श्रीदत्त सेठ नाम का धनी सेठ रहता था, वह श्रीदत्त सेठ कोटि अरबों का स्वामी था।।56।।

वह सेठ केशर आदि पदार्थों को जहाजों से भर भरकर दूसरे द्वीपों में ले जाकर बेचता था और इस प्रकार वह अपना व्यापार करता था।।57।।

वह श्रीदत्त सेठ अपनी मानकर्म के उदय से किसी एक दिन अपने हृदय में विचार करने लगा कि मणियाँ मोती आदि बहुमूल्य पदार्थों में मेरे समान और कोई धनी नहीं है।।58।।

किसी एक समय वह श्रीदत्त सेठ दूसरे धनियों का अभिमान चूर करने के लिए समुद्र के किनारे पर बसे हुए और प्रचुर धन से भरे हुए स्तंभतीर्थ नाम के नगर में पहुँचा।।59।।

अपने साथ वह कश्मीर में उत्पन्न हुई केशर के सात जहाज भरकर ले गया था। उसके आने की खबर सुनते ही बहुत से वैश्य उसके समीप आये।।60।।

परन्तु उसने अभिमान में आकर सबको यह उत्तर दिया कि यह मेरी केशर का दाम एक साथ सोने चाँदी के रूप में देगा वही इस केशर को ले सकेगा।।61-62।।

उसके इस प्रकार अभिमान से भरे हुए वचनों को सुनकर सेठ लोग कहने लगे कि ''व्यापारियों को दुराग्रह (झूठा हठ) करते हमने कहीं नहीं देखा।।63।।

''यह तो कोई धूर्त आया है जो व्यापार का बहाना लेकर दूसरों को ठगना चाहता है।'' सेठ लोगों की कही हुई यह बात उस नगर के सब निवासियों के मुख से निकलने लगी।।64।।

उसी नगर में एक सेठ रहता था। वह अपना घर बनवाने के लिए नींव खुदवा रहा था। उसने भी लोगों के मुख से निकली हुई यह बात सुनी।।65।।

वह अपने मैले कपड़े पहिन कर उसके समीप पहुँचा और उसने सबसे अधिक मूल्य देकर उस श्रीदत्त सेठ की सब केशर खरीद ली।।66।।

उस खरीदी हुई सब केशर को वह सेठ अपने घर लाया और उसने वह सब केशर अपने मकान की नींव भरने में डाल दी। उस सेठ के इस कार्य को अपनी आँखों से देखकर उस श्रीदत्त सेठ का अभिमान सब नष्ट हो गया।।67।।

यह शरीर कभी न कभी अवश्य नष्ट होने वाला है। यदि ऐसे शरीर के द्वारा यश की रक्षा होती हो तो अवश्य कर लेनी चाहिए। क्योंकि यश कभी नष्ट नहीं होता। यदि मनुष्य का शरीर नष्ट भी हो जाए तो भी वह यश रूपी शरीर के द्वारा सदा जीवित बना रहता है।।68।।

इस संसार में बल ऐश्वर्य और धन आदि की कोई मर्यादा नहीं है, एक-एक पुरुष के अधीन अनेक रत्नों से भरी हुई यह समस्त पृथ्वी रह सकती है।।69।।

श्रीदत्त की सब केशर खरीद कर नींव में भर देने वाला यह सेठ भी समय के अनुसार जहाजों में बैठकर व्यापार के लिए निकला परन्तु अशुभ कर्म के उदय से वायु के भारी झकोरे से धन से भरा हुआ वह जहाज टूट कर नष्ट हो गया।।70।।

उस सेठ का आयु कर्म बाकी था इसलिए वह लकड़ी के किसी तख्ते पर बैठकर समुद्र से पार निकल आया सो ठीक ही है, क्योंकि आयु कर्म उदय होने पर अन्य कर्म भी अनुकूल ही हो जाते हैं।।71।।

जिस नगर में केशर बेचने वाला वह श्रीदत्त सेठ ठहरा हुआ था, कर्म के उदय से उसी नगर में वह केशर खरीदने वाला सेठ भी निर्धन अवस्था में आया सो ठीक है, क्योंकि कर्मों की गति बड़ी ही विचित्र होती है।।72।।

उस श्रीदत्त सेठ ने अपने प्रत्यभिज्ञान से उसे देखते ही पहिचान लिया कि यही वही धनी सेठ है जिसे मैंने स्तम्भ तीर्थ नाम के नगर में देखा था।।73।।

श्रीदत्त ने उसका आलिंगन किया, उससे मिला, बड़े उत्सव से उसे अपने घर ले गया और वस्त्र अलंकार आदि देकर बहुत ही आदर सत्कार कर उसका मान किया।।74।।

स्तम्भ तीर्थ का रहने वाला वह सेठ कुछ दिन उस नगर में रहा, वहाँ पर उसने बहुत सा धन कमाया और फिर वह लौटकर अपने घर को आया।।75।।

समय के अनुसार उन दोनों सेठों ने दीक्षा धारण की, दोनों ने कठिन तपश्चरण किया और अन्त में समाधिमरण धारण कर दोनों ही अपनी अपनी योग्यता के अनुसार शुभ गति में पहुँचे।।76।।

वह राजा भूपाल इस प्रकार चिंतवन करते करते फिर चिंतवन करने लगे कि जब मनुष्यों का पुण्य क्षय हो जाता है तब बल संपत्ति आदि सब क्षय हो जाती है। और तभी मानभंग आदि हार्दिक दुःख उत्पन्न होते हैं। वास्तव में देखा जाए तो पाप ही सब दुःखों का कारण है।।77।।

मान, पूजा बल, ऐश्वर्य, प्रभुता, नीरोगता आदि मन को अच्छे लगने वाले जितने पदार्थ हैं वे सब मनुष्यों को तपश्चरण के बल से ही उत्पन्न होते हैं।।78।।

यदि कारण-सामग्री पूर्ण हो तो उससे हीन कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता। तथा तत्वज्ञानी पुरुष उन मान पूजा आदि समस्त उत्तम कार्यों का कारण निर्मल तप ही बतलाते हैं।।79।।

इस अनुमान से मुझे यह निश्चय कर लेना चाहिए कि पहले भव में मैंने निर्मल तपश्चरण नहीं किया था इसीलिए यह मेरा मान भंग हुआ है।।80।।

जिनके हृदय व्यापार में लगे रहने के कारण सदा चंचल रहते हैं ऐसे गृहस्थ लोग बिना मुनिदीक्षा धारण किये शास्त्रों में कही हुई विधि के अनुसार उत्तम तपश्चरण नहीं कर सकते, इसलिए अब में वहीं मुनिदीक्षा धारण करता है।।81।।

इस प्रकार शरीर, बल, आरोग्य, धन, ऐश्वर्य, पुत्र, स्त्री, भाई आदि सबको क्षणिक मानकर उस राजा भूपाल ने राज्य के योग्य अपने पुत्र को राज्याभिषेक कर अपने सिंहासन पर बिठाया और स्वयं सम्भूत नाम के आचार्य के समीप जाकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की।।82-83।।

उस भूपाल मुनिराज ने बहुत उग्र तपश्चरण किया, सिंहनिष्क्रीड़ित और आचाम्ल आहार आदि अनेक प्रकार का तप किया। इस प्रकार तप करते-करते अन्त के महीने में उन मुनिराज की निंदनीय बुद्धि साधुओं के द्वारा अत्यंत निंदनीय ऐसे निदान करने में लग गई, सो ठीक है। क्योंकि इस संसार में जिस खेत जोतने वाले किसान के पास फल न हो तो फिर उसका सब उद्यम व्यर्थ ही है।।84-85।।

उसने निदान किया कि "मैं इस तप के प्रभाव से अगले जन्म में छहों खण्ड पृथ्वी का स्वामी चक्रवर्ती राजा होऊँ, जिससे कि समस्त बलवान राजाओं को भी जीत सकूँ।।86।।

उस मूर्ख ने अपने तप रूपी अमृत को इस प्रकार के निदान रूपी विष से दूषित कर दिया। सो ठीक ही है क्योंकि जो मूर्ख अधिक मूल्य देकर थोड़े मूल्य की वस्तु लेना चाहता हैं उसके लिए वह दुर्लभ नहीं होती, मिल ही जाती है।"।।87।।

अन्त में उसने समाधिमरण धारण किया और आयु के नाश होने पर संन्यास के द्वारा औदारिक शरीर को छोड़कर महाशुक्र नाम के दशवें स्वर्ग में देव उत्पन्न हुआ।।88।।

जिस समय वह स्वर्ग में उत्पन्न हुआ था उस समय वह साथ ही उत्पन्न हुए आभरण, माला, मुकुट आदि से सुशोभित था, सोते हुए के समान उठ बैठा था और एक मुहूर्त में ही यौवन अवस्था में प्राप्त हो गया है।।81।।

उत्पन्न होते ही वह विचार करने लग गया था कि "यह क्या है, ये देवांगनाएँ कौन हैं, मैं कौन हूँ और मस्तक झुकाए हुए देव कौन हैं?" इस प्रकार का विचार करते ही उसको अवधि ज्ञान प्रगट हो गया था।।90।।

सोलह सागर की उसकी आयु थी, अणिमा महिमा आदि आठों ऋद्धियाँ उसे प्राप्त थीं और जितना उसका अवधिज्ञान का क्षेत्र था उतने क्षेत्र तक वह आ जा सकता था। इस प्रकार सुख पूर्वक वह अपना काल व्यतीत करता था।।।91।।

अथानन्तर-जिसका एक लाख योजन का विस्तार है, जो लवण महासागर के जल से घिरा हुआ है और जो दो सूर्यों की प्रभा से प्रकाशमान है ऐसे इसी जम्बूद्वीप में एक सुदर्शन नाम का मेरू पर्वत है जो भद्रसाल वन, गजदन्त आदि से सुभोभित है। भगवान तीर्थंकर के जन्म के समय होने वाले महाभिषेक के जल की धारा से अत्यन्त पवित्र है और भव्य जीवों के पापों को नाश करने वाला है।।92-93।।

उस सुदर्शन मेरु की दक्षिण दिशा की ओर एक भारतवर्ष नाम का क्षेत्र है जो छह खण्डों से सुशोभित है, धनुष के समान उसका आकार है और जो सब क्षेत्रों में उत्तम है।।94।।

वह भरत क्षेत्र पाँच सौ छब्बीस योजन छह कला अर्थात् 526 योजन चौड़ा है और अनेक नदी पर्वतों से सुशोभित है।।95।।

उसी भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड के मध्य में एक कौशल नाम का देश शोभायमान है जो कि बहुत से धन ऐश्वर्य आदि से भरपूर है और चतुर लोगों से सुशोभित है।।96।।

उसी कौशल देश में अनेक ऊँचे-ऊँचे वृक्ष एक उत्तम राजा के समान सुशोभित थे। क्योंकि जिस प्रकारर उत्तम राजा के पास अनेक उत्तम-उत्तम पत्र अर्थात् सवारियाँ होती है उसी प्रकार उन वृक्षों पर अनेक उत्तम पत्र अर्थात् पत्ते थे। जिस प्रकार राजा उत्तम छत्र की छाया से सुशोभित होता है उसी प्रकार वे वृक्ष भी अपनी उत्तम छाया से सुशोभित थे, और जिस प्रकार उत्तम राजा अपने आश्रित लोगों को उत्तम फल देता है उसी प्रकार वे वृक्ष भी अपने आश्रय रहने वालों को उत्तमोत्तम फल देते थे।।97।।

वहाँ की प्रजा अपनी मर्यादा का पालन बड़ी अच्छी तरह से करती थी। इसीलिए वह कभी दण्ड की इच्छातक नहीं करती थी। इसी प्रकार वहाँ के सरोवर सदा निर्मल जल से भरपूर रहते थे।।98।।

वहाँ की लताएँ सुन्दर स्त्रियों के समान शोभायमान थीं क्योंकि जिस प्रकार

सुन्दर स्त्रियाँ मनोहर पत्र रचना करती है उसी प्रकार उन बेलों पर भी मनोहर पत्ते लगे हुए थे तथा जिस प्रकार स्त्रियाँ प्रारम्भ से लेकर मध्य भाग तक रसीली होती हैं और अन्त में नीरस होती हैं उसी प्रकार वे बेलें भी जड़ से लेकर मध्यभाग तक रसीली थी और अन्त में नीरस थी।।99।।

उस देश में धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थ बड़े हर्ष के साथ सदा बढ़ते रहते थे तथा दरिद्र शब्द के बाहरी अर्थ का तो वहाँ पर सर्वथा ही अभाव था।।100।।

वहाँ पर पेड़-पेड़ पर प्याऊ थीं, सब जगह भोजन देने वाले अन्न सन्न थे इसलिए पथिक लोग मार्ग में खाने योग्य भोजनों का व्यर्थ भार कभी धारण नहीं करते थे।।101।।

वहाँ के सब देश भोगभूमि की पृथ्वी की शोभा को भी जीतते थे क्योंकि भोगभूमि के भोग कल्पवृक्षों से मिलते थे और वहाँ पर सदा सब तरह के भोग उन लोगों के समीप ही रहते थे।।102।।

वहाँ के वृक्ष सब फलते थे, लताएँ सब फूलती थीं और वहाँ की धनी प्रजा सदा उत्सव करती रहती थीं, सदा निरोग रहती थीं और सब तरह की बाधाओं से रहित थीं।।103।।

उसी देश में एक साकेत नाम की नगरी है जो कि बहुत ही सुन्दर घरों की पंक्तियों से शोभायमान हैं नगर के बड़े-बड़े दरवाजों की पंक्तियों से शोभायमान है तथा और भी सुन्दर शोभाओं से शोभायमान है।।104।।

उस नगर के चारों ओर तीन खाई हैं, कोट हैं, अनेक तहखाने हैं, अनेक कंगूरें हैं और अनेक राजमार्ग हैं। इन सबसे वह नगर बहुत ही सुन्दर जान पड़ता है।।105।।

वहाँ के मनुष्य देवों के समान थे, स्त्रियाँ देवांगनाओं के समान थीं, राजा इन्द्र के समान था और घर सब देवों के विमानों की स्पर्धा करने वाले थे।।106।।

वहाँ पर ऐसे कोई धनी नहीं थे जो दान न देते थे, कोई ऐसे उत्सव नहीं थे

जिनमें भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा न होती हो और कोई भी ऐसी कुल स्त्रियाँ नहीं थी जो शीलव्रत धारण न करती हों।।107।।

उस साकेत नगर में सहस्त्रबाहु नाम का राजा राज्य करता था। वह राजा सहस्त्रबाहु इक्ष्वाकु वंशरूपी समुद्र को बढ़ाने के लिए चन्द्रमा के समान था।।108।।

उस राजा की प्रताप रूपी अग्नि सदा जलती ही रहती थी। वह राजा चलते हुए दिव्य लोहे के गोले वा सूर्य के समान दैदीप्मान था और इसीलिए वह अपराध करने वाले अथवा मिथ्या अभिमान करने वालों को अवश्य ही जलाता रहता था।।109।।

उस राजा का नाम सुनकर ही सब शत्रु-राजाओं के ह्रदय विदीर्ण हो जाते थे, वे लोग या तो अपना वैर छोड़ देते थे या शस्त्र छोड़ देते थे तथा डर से घबड़ा कर नम्र हो जाते थे।।110।।

शत्रुओं को जीतने से उत्पन्न हुआ उसका निर्मल यश बेला के फूल के समान शोभायमान था तथा उसी यश को दिग्गजों के दांतों के समीप बैठी हुई दिक् कन्याएँ बड़े मीठे स्वरों में गाती थीं।।111।।

यद्यपि उस राजा की प्रताप रूपि अग्नि ने समस्त शत्रु रूपी ईंधन को भस्म कर दिया था तथापि वह अग्नि अग्निकुमार देवों के समान भीषण रूप धारण करती हुई सदा जलती रहती थी।।112।।

अवज्ञा को धारण करने वाले समस्त राजा उसकी आज्ञा के माला के समान सदा मस्तक पर धारण करते रहते थे फिर भला बनावटी शत्रु तो उसके किस प्रकार हो सकते हैं?।।113।।

अथानन्तर-

कुब्जपुरनगर के राजा पारत के एक कन्या थी जिसका नाम चित्रमति था वह बड़ी ही मनोहर थी और सर्वांग सुंदरी थी।।114।।

जिस प्रकार लता पर फूल आते हैं उसी प्रकार जब कन्या की यौवन अवस्था

हुई तब उसने फूलों के समान अनेक राजपुत्रों में कामज्वर उत्पन्न कर दिया था।।115।।

राजा पारत ने जब इस पुत्री को विवाह के योग्य देखा तब उसने बड़े उत्सव के साथ साकेत नगर के राजा सहस्त्रबाहु को वह कन्या ब्याह दी।।116।।

पंचन्द्रियों से उत्पन्न हुए उत्तम सुखों का अनुभव करते हुए उन दोनों का काल व्यतीत होने लगा और उनके एक कृतवीर नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।।117।।

राजा भूपाल का जीव जो तपकर महाशुक्र नाम के स्वर्ग में उत्पन्न हुआ था वह भी वहाँ से चयकर राजा सहस्त्रबाहु की रानी चित्रमती के गर्भ में आया।।118।।

इसी बीच में परशुराम का वृतांत भी संघटित हुआ था, इसलिए जिस प्रकार किसी को निर्दोष बतलाने के लिए अनेक उपाधियाँ कहनी पड़ती हैं उसी प्रकार में अब परशुराम के जीवन चरित्र को कहता हूँ।।119।।

जो भव्य जीवों! यदि सुख प्राप्त करना चाहते हो तो राजा भूपाल के जीवन चरित्र को अपने ह्रदय में समझकर अभिमान का त्याग करो तथा आत्मा के अन्य विकारों का त्याग करो और श्री रत्नचन्द्र के द्वारा कहे हुए श्री जैनधर्म को धारण करो।।120।।

जो खण्डेलवाल वंश का भूषण है, पाटणी गोत्र को प्रकाशित करने के लिए सूर्य वैश्यों का अधिपति है और रेखा का पुत्र है ऐसा श्री हेमराज सदा जयशील हो तथा विद्वानों का शिरोमणि पंडित तेजपाल भी सदा जयशील हो।।121।।

इस प्रकार आचार्य श्री सकलचंद्रके आज्ञाकारी भट्टारक श्री रत्नचंद्र विरचित विद्वत्वर श्री तेजपाल की सहायता से निर्मापित तथा खण्डेलवाल जाति के पाटनी गोत्र रूपी आकाश के सूर्य ऐसे हेमराज नाम के चिन्ह से सुशोभित ऐसे इस सुभौम चरित्र में सुभौम के गर्भावतरण को वर्णन करने वाला यह पहला सर्ग समाप्त हुआ।

दूसरा सर्ग

जमदग्नि तपस्वी का तप से च्युत होने का वर्णन

अथानन्तर-गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहने लगे कि बुद्धिमान श्रेणिक सुन। कानों को सुनने योग्य कथाओं से भरपूर और अनेक प्रकार की शिक्षा देने वाला ऐसा परशुराम का जीवन चरित्र कहता हूँ।।1।।

राजा सहस्त्रबाहु के एक काका था जिसका नाम शतबिंदु था उसका विवाह राजा पारायन की बहिन श्रीमती के साथ हुआ था।।2।।

उन दोनों के एक जमदग्नि नाम का पुत्र हुआ था, जो कि निकृष्ट पापी था और उसका हृदय भी नितान्त अशुभ था।।3।।

उसने अन्य मत के शास्त्र पढ़े थे, वह बहुत अच्छा बोलने वाला था, परन्तु उसकी बुद्धि विपरीत थी (मिथ्यामार्ग में लगी हुई थी।) और वितण्डला छल-जाति आदि जानने वाले वादियों के समूह में वह श्रेष्ठ था।।4।।

जब उसकी कुमार अवस्था हुई थी उसी समय उसकी माता श्रीमती मर गई थी। सो ठीक है। जब कर्मों का उदय अशुभ होता है तब जीवों को क्या-क्या अनिष्ट आकर उपस्थित हो जाते हैं।।5।।

माता की मृत्यु के उत्पन्न हुए शोकरूपी दावानल अग्नि से वह सदा जलता रहता था, सो ठीक ही है। क्योंकि इष्टजनों के विरह होने पर जब जीव की ऐसी दुःखरूप अवस्था हो ही जाती है।।6।।

उसकी दूसरी सौतेली माता जो उस पर वचनों का प्रहार और तिरस्कार करती थी, उसे वह सह नहीं सका इसलिए विरक्त होकर वह तपसी हो गया और तप करने वाली तपसियों में जाकर रहने लगा।।7।।

उसने अपने पैर ऊपर को लटका दिये थे, सिर नीचे को करा लिया था, नीचे जलती हुई अग्नि की शिखाएँ जल रही थीं और उसके शरीर की अंतड़ियों के जाल का समूह सब टूट रहा था। इस प्रकार वह अनेक प्रकार से कायक्लेश कर रहा था।।8।।

वह जमदग्निराम जहाँ पर तपस्या कर रहा था उसी देश में दृढ़ग्राही नाम का राजा राज्य करता था। वह राजा बड़ा ही बलवान था। और भगवान श्री जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की सेवा करने के लिए एक अद्वितीय भ्रमर के समान था।।9।।

उसी नगर में एक हरिवर्मा नाम का प्रसिद्ध और उत्तम ब्राह्मण रहता था वह ब्राह्मण अट्ठारह पुराणों के अर्थ करने में तथा वेद वेदांग सब में परिगामी था।।10।।

वह ब्राह्मण अजामेघ यज्ञ (जिनमें बकरे और घोड़े मारे जावें) आदि क्रियाकाँड को करने वाला था, बड़ा ही उन्मत्त था, अभिमानी था, सोमवल्ली के पत्तों को ही ढूंढ़ता रहता था और यज्ञादिक कर्म करने में बहुत ही चतुर था।।11।।

उस ब्राह्मण में और राजा दृढ़ग्राही में परस्पर बहुत ही प्रेम था और वे सदा एक-दूसरे से लेते देते रहते थे। सो ठीक है क्योंकि जीवों में जो संस्कार होते हैं वे प्रायः पहले जन्म के ही होते हैं।।12।।

बिना उस ब्राह्मण के न तो राजा ही कभी स्नान भोजन आदि क्रियाएँ करता था और न राजा के बिना वह ब्राह्मण ही कभी स्नान भोजन आदि क्रियाएँ करता था। सो ठीक ही है क्योंकि प्रेम का लक्षण ही ऐसा कहा गया है।।13।।

यद्यपि राजा और ब्राह्मण दोनों में गाढ़ प्रेम था तथापि दोनों ही अपने मत के ही प्रेमी थे। इस प्रकार वे दोनों ही सुखपूर्वक निवास करते थे और दोनों ही रसिक परस्पर क्रीड़ा करते थे।।14।।

इस प्रकार कितना ही समय बीत जाने पर काललब्धि को निमित्त पाकर और वैराग्य उत्पन्न करने वाले कुछ भी कारणों के मिल जाने पर राजा दृढ़ग्राही ने जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली।।15।।

अपने मित्र राजा दृढ़ग्राही के विरह से जिसका हृदय दुःखी हो रहा था, ऐसे उस ब्राह्मण ने भी मिथ्यात्व की भावना से भरे हुए तपसियों का तप धारण कर लिया।।16।।

अपने मत को निरूपण करने वाले शास्त्रों के कहे अनुसार उस ब्राह्मण ने घोर और कठिन तपश्चरण किया और आयु के अन्त में मरकर ज्योतिषी जाति के देवों के विमानों में देव हुआ।।17।।

राजा दृढ़ग्राही जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर तथा कठिन तपश्चरण कर आयु के अन्त में सौधर्म स्वर्ग में बड़ी ऋद्धि को धारण करने वाला शुद्ध सम्यदृष्टि देव हुआ।।18।।

उसने प्रगट हुए अवधिज्ञान से जान लिया कि मेरा पहले जन्म का मित्र ज्योतिषी जाति के देवों में एक देव उत्पन्न हुआ है।।19।।

उसने अपने हृदय में विचार किया कि मेरे पहले जन्म का मित्र केवल मिथ्यात्व के सम्बन्ध में इस जन्म में आकर नीचे देव हुआ है। इसलिए जीवों के इस मिथ्यात्व को बार-बार धिक्कार हो।।20।।

अतएव भगवान श्री जिनेन्द्र देव के वचनरूपी अमृत के समूह के द्वारा मैं जाकर उसे समझाता हूँ। क्योंकि इस संसार में उस सामर्थ्य से ही क्या लाभ है जो मित्रादिक के उपयोग में भी न आ सके।।21।।

अपने हृदय में यही विचार कर वह राजा दृढ़ग्राही का जीव सौधर्म स्वर्ग का देव अपनी कांति से अन्धेरे को दूर करता हुआ ज्योति लोक में आया।।22।।

वहाँ आकर उसने उस ब्राह्मण के जीव को (ज्योतिषी देव को) देखा और फिर उससे कहा कि देख, मिथ्यात्व के सम्बन्ध से तू तो इस जन्म से आकर नीच देव हुआ है और मैं सम्यग्दर्शन के प्रभाव से उत्कृष्ट देव हुआ हूँ इसलिए तू अब मेरे कहने से सब जीवों का हित करने वाले और स्वर्ग मोक्ष देने वाला इस जैन धर्म को धारण कर तथा मिथ्यात्व को छोड़।।23-24।।

स्याद्वाद को निरूपण करने वाले उस सौधर्म निवासी देव की बात सुनकर वह ज्योतिषी देव कहने लगा कि तपसियों का तप अशुद्ध क्यों हैं और जैनियों का तप निर्मल क्यों हैं?।।25।।

क्या मोक्ष प्राप्त करने के लिए तपसियों का तपरूप साधन साध्य का

अविनाभावी प्रतीत नहीं होता? और यह तो निश्चित ही है कि साध्य की सिद्धि साधन से ही होती है। बिना साधन के साध्य की सिद्धि कभी नहीं हो सकती।

भावार्थ- मोक्ष की प्राप्ति जैनियों के ही तप से होती है। तपसियों के तप से नहीं होती। इसमें कोई खास कारण नहीं है। मोक्ष की प्राप्ति तप से होती है, चाहे वह तप जैनियों का हो और चाहे तपसियों का हो। तपसियों के तप से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती इसमें कोई खास कारण नहीं है। अथवा, यह हेतु कोई हेत्वाभास नहीं है?।।26।।

इसके उत्तर में सौधर्म निवासी देव कहने लगा कि वह तपसियों का तप अशुद्ध है क्योंकि उससे मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं होती इसलिए वह मोक्षमार्ग का साधन नहीं है, तथा वह तपसियों का तप मोक्षमार्ग का साधन नहीं है यह बात असिद्ध भी नहीं है क्योंकि वह तप हिंसादिक का विषयभूत है।

यहाँ पर कदाचित कोई यह कहे कि तपसियों का तप हिंसादिक का विषय भूत किस प्रकार है? तो उसके लिए कहते हैं कि इस प्रकरण में अपने मन में यह भी नहीं समझ लेना चाहिए कि तपसियों का तप हिंसादि का विषयभूत है। यह बात असिद्ध है क्योंकि अग्नि जलाना, स्नान करना आदि कर्म हिंसा के अंग हैं इनमें हिंसा होती है इस बात को सब कोई मानता है।

भावार्थ- तपसियों के तप करने में स्नान किया जाता है। तथा पंचाग्नि तप किया जाता है। और इनमें हिंसा अवश्य होती है इसीलिए तपसियों के तप में अवश्य हिंसा है और इसलिए वह मोक्षमार्ग की प्राप्ति में असाधन है।।28।।

यहाँ पर कदाचित् कोई यह कहे कि मोक्षमार्ग की प्राप्ति में हिंसामय साधन होने पर भी क्या हानि है? तो इसके उत्तर में कहते हैं कि हिंसामय साधन शास्त्रों में निषिद्ध रूपों से दूषित बतलाये हैं। इसलिए ब्राह्मण लोग तपसियों के तपरूप हेतु से मोक्षमार्ग की प्राप्ति साध्य की सिद्धि किस प्रकार कह सकते हैं?

भावार्थ- तपसियों के तप में हिंसा अवश्य होती है और हिंसा का सबने निषेध किया है, उसे सदोष बतलाया है इसलिए तपसियों का तप भी सदोष और उससे कभी साध्य की सिद्धि नहीं हो सकती।।29।।

इसके सिवाय एक बात यह भी है कि वह उपाधि वा हेतु दो प्रकार का है एक शांति वृत्ति और दूसरा अशंकित वृत्ति। यदि वह शंकित वृत्ति है तो भी असत्य हैं क्योंकि वह पदार्थ के समान सन्देह रूप है।

भावार्थ- शंकित वृत्ति हेतु में जिस प्रकार वह पदार्थ संदेहात्मक है उसी प्रकार उस हेतु को भी सन्देहात्मक ही मानना पड़ेगा। और सन्देहात्मक मानने से असत्य मानना ही पड़ेगा।।30।।

कदाचित् यह कहो कि वह हेतु अशंकित वृत्ति है तो वह किस प्रमाण से सिद्ध होगा, तथा अशंकित वृत्ति ही नहीं हो सकता क्योंकि उसका अभाव भी तो निश्चित किया जाता है परन्तु निर्दोष साधन से साध्य की सिद्धि को कौन रोक सकता है? यदि निर्दोष साधन से भी साध्य की सिद्धि नहीं होगी तो फिर अनुमान से किसी के भी मत की सिद्धि नहीं होगी।

भावार्थ- मोक्षमार्ग की प्राप्ति के लिए जैनियों का तप निर्दोष साधन है, उससे मोक्षमार्ग की प्राप्ति अवश्य होती है। उसे कोई रोक नहीं सकता।।32।।

इस प्रकार सौधर्म निवासी देव की बात सुनकर वह ज्योतिषी देव कहने लगा कि जैनियों की कही हुई उत्तम युक्ति तयों से यद्यपि मेरे मत का खण्डन हो जाता है तथापि मैं वेद के धर्म को मानने वाला हूँ आप वेद के मत से बाहर हैं।।33।।

ज्योतिषी देव की यह बात सुनकर वह सौधर्म निवासी देव कहने लगा कि ''वेद में हिंसा का उपदेश भरा हुआ है इसलिए वे वेद भी कभी प्रमाण नहीं माने जा सकते। यदि वेदों को भी शास्त्र माना जायेगा तो फिर शस्त्र किनको कहा जायेगा?''

भावार्थ- वेद हिंसा का उपदेश देते हैं इसलिए वे शास्त्र कभी नहीं कहे जा सकते। हिंसा का विधान करने से वे तो शस्त्र के समान हैं।।34।।

तदनन्तर परस्पर विवाद करते हुए वे दोनों ही अपना-अपना रूप बदलकर गुरु और देव दोनों की परीक्षा करने के लिए इस पृथ्वी तल पर आए।।35।।

सो ठीक ही है क्योंकि जो शास्त्रों के द्वारा नहीं समझ सका उसे लोकचतुर

विद्वानों को संसार के अनेक उदाहरण देकर समझाना चाहिए। सबसे उत्तम न्याय यही है इसी बात को अपने हृदय में मानते हुए उस तत्वज्ञानी सौधर्म निवासी देव ने उस अपने मित्र ज्योतिषी देव से कहा कि देखो तुम्हारा ब्रह्मा भी वेद की परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सकता। यदि कदाचित् तुम यह कहो कि वह किस प्रकार उत्तीर्ण नहीं हो सकता तो इसका उत्तर मैं कहता हूँ, तू सुन।।36-37।।

किसी एक दिन स्वर्ग का इन्द्र अपनी सभा में सिंहासन पर विराजमान था। अकस्मात् वह सिंहासन हिल उठा। सिंहासन को हिलता हुआ देखकर इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति से पूछा कि यह क्या बात है?।।38।।

इसके उत्तर में बृहस्पति ने भी अपनी बुद्धि से सोचकर इन्द्र से कहा कि ब्रह्मा तेरे राज्य लेने की इच्छा से घोर तपश्चरण कर रहा है उसके प्रभाव से यह तेरा सिंहासन हिल रहा है।।39।।

यह सुनते ही इन्द्र को बड़ी चिंता हुई। बड़े आदर के साथ बृहस्पति से कहा कि ऐसा कोई उपाय करना चाहिए जिससे कि इस ब्रह्मा के तप का नाश हो जाए।।40।।

इसके उत्तर में बृहस्पति ने कहा कि ब्रह्मा को तेरे राज्य लेने की इच्छा से तप करते हुए चार हजार वर्ष बीत गये हैं।।41।।

इसलिए तू अब किसी उत्तम स्त्री को भेजकर उसके तप को हरण कर। क्योंकि तपश्चरण को नष्ट करने के लिए स्त्री को छोड़कर और कोई दूसरा उपाय नहीं।।42।।

बृहस्पति की यह बात सुनकर इन्द्र ने सत्ताईस करोड़ अप्सराओं का एक-एक तिलमात्र उत्तम-उत्तम रूप ग्रहण किया, और इस प्रकार से सबसे उत्तम-उत्तम रूप ग्रहण कर एक तिलोत्तमा नामकी अप्सरा बनाई।।43।।

तदंनतर इन्द्र ने उस तिलोत्तमा को समझाया कि तू जाकर किसी तरह भी ब्रह्मा का तप नष्ट कर दे। इस प्रकार समझाकर उस इन्द्र ने तिलोत्तमा को ब्रह्मा के पास भेजा।।44।।

वह तिलोत्तमा ब्रह्मा को तप से चलायमान करने के लिए उसके सामने नृत्य करने लगी। वह नृत्य हाव भाव विलास से परिपूर्ण था, मधुर स्वर से पूरित था और श्रृंगार रस से उत्तेजित अवस्था को प्राप्त हो रहा था।।45।।

चंचल नेत्रों को धारण करने वाली और अत्यन्त चपल ऐसी वह तिलोत्तमा अपने शरीर के गुह्य अवयवों को दिखलाती हुई उस ब्रह्मा के शरीर पर ही नृत्य करने लगी।।46।।

जिस प्रकार नदी पानी के झकोरे से विंध्याचल पर्वत को भी भेद डालती है उसी प्रकार उस तिलोत्तमा ने भी कटाक्षों के द्वारा फेंके हुए वाणों के समूह से और रसीले मधुर वचनों से उस ब्रह्मा का मन भेद डाला।।47।।

तदंनतर वह अन्य दिशायें भी नृत्य करने लगी। जिस-जिस दिशा में वह नृत्य करती थी उसी दिशा में वह ब्रह्मा अपने एक हजार वर्ष के किए हुए तप को देकर अपना एक मुख बना लेता था इस प्रकार तिलोत्तमा ने चारों दिशाओं में नृत्य किया और ब्रह्मा ने भी एक-एक हजार वर्ष का तप देकर चारों ओर अपना मुख बना लिया।।48।।

तदन्तर वह सुन्दरी तिलोत्तमा ऊपर आकाश में खड़ी होकर नृत्य करने लगी। परन्तु लज्जा के वशीभूत हुआ वह ब्रह्मा ऊपर की ओर देख नहीं सका, इसलिए उसने पाँच सौ वर्ष का तप खर्च कर ऊपर की ओर एक गधे का मुँह और बना लिया और ऊपर किया हुआ नृत्य भी देखने लगा। इस प्रकार तिलोत्तमा के राग में वशीभूत हुए ब्रह्मा के दोनों लोक नष्ट हो गये।।49-50।।

तदन्तर वह तिलोत्तमा उस ब्रह्मा का समस्त तप नष्ट कर अपने स्वर्ग को चली गई। सो ठीक ही हैं क्योंकि तीनों लोकों में स्त्रियाँ ही रागी पुरुष का ही मोहित कर ठग लेती हैं।।51।।

उस ब्रह्मा ने जब तिलोत्तमा को नहीं देखा तो उसका हृदय कामदेव से बहुत ही पीड़ित हो गया और वह अपने गधे के मुख से देवों को खाने के लिए उनके पीछे-पीछे दौड़ा।।52।।

उसके डर से वे सब देव परस्पर सलाह कर एकत्रित होकर स्वर्ग में गये और अपना दुःख दूर करने के लिए उन्होंने इन्द्र से जाकर पुकार की।।53।।

उन देवों ने इन्द्र से कहा कि दोनों लोकों से भ्रष्ट हुआ यह निर्दय ब्रह्मा अपने गधे के मुँह को दूर करने के लिये आपके पास आया है।।54।।

यह सुनकर इन्द्र महादेव के पास गया। महादेव ने आकर उस ब्रह्मा का वह पाँचवाँ गधे का मुँह काट डाला। सो ठीक ही है क्योंकि जीवों को उग्र पापों का फल इसी लोक में मिल जाता है।।55।।

मस्तक कटते ही ब्रह्मा ने ब्रह्महत्या करने वाले महादेव को शाप दिया कि यह मस्तक तेरे हाथ से छूटकर पृथ्वी पर नहीं गिरेगा, तेरे ही हाथ में लगा रहेगा।।56।।

इस शाप को सुनते ही उस शाप को दूर करने के लिए महादेव ने ब्रह्मा से याचना की और कहा कि आप मेरा यह ब्रह्महत्या का पाप क्षमा कर देंवे।।57।।

महादेव की याचना करने से ब्रह्मा के हृदय में दया उत्पन्न हुई और उसने महादेव से कहा कि जब कृष्ण कपाल उत्पन्न करेंगे तब यह मस्तक पृथ्वी पर गिर पड़ेगा।।57।।

ब्रह्मा की यह बात सुनकर महादेव के कपाल व्रत धारण किया सो ठीक ही है, क्योंकि संसार भर में फैलने वाली यह माया देवों से भी नहीं छोड़ी जा सकती।।59।।

उस कपाल को दूर करने के लिए वह महादेव कृष्ण के पास पहुँचा सो ठीक ही है। अपने दोषों को दूर करने के लिए यह मनुष्य किस बड़े महापुरुष का आश्रय नहीं लेता है। अर्थात् इसको सबका आश्रय लेना पड़ता है।।60।।

इधर कामदेव से संतप्त वह ब्रह्मा ने एक रीछिनी को देखा और कामदेव से पीड़ित हुआ वह ब्रह्मा आदर के साथ उसी का सेवन करने लगा सो ठीक ही है, क्योंकि कामदेव से पीड़ित हुआ यह जीव किसका सेवन नहीं करता? अर्थात् सबका सेवन करता है।।62।।

उस रीछिनी के ब्रह्मा से गर्भ धारण हो गया तथा पूर्ण समय बीत जाने पर एक सुन्दर पुत्र हुआ जो जांमवंत के नाम से प्रसिद्ध है।।63।।

इसलिए हे मित्र! मानना पड़ेगा कि ब्रह्मा भी ज्ञानहीन हैं, काम में अंधा है, विषयों में तल्लीन और उससे अपनी इन्द्रियाँ तक नहीं जीती जा सकती फिर भला वह देव किस प्रकार हो सकता है? अर्थात् कभी नहीं हो सकता।।64।।

वह ब्राह्मण का जीव यह सुनकर कहने लगा कि अच्छा, मेरे सर्वोत्तम गुरु जमदग्नि हैं संसार में प्रसिद्ध हैं। पंचाग्नि तपने से उनका शरीर कृश हो रहा है। और इस संसार में इन्द्र भी आकर उन्हें ध्यान से नहीं डिगा सकता।।65।।

यह सुनते ही जमदग्नि की आलोचना व परीक्षा करने के लिए वे दोनों ही देव चिड़ियाँ और चिड़ा बन गये और बड़ी उत्सुकता के साथ उन मुनि की मूँछों में रहने लगे।।66।।

कुछ समय बीत जाने पर माया से चिड़ा के रूप में बना हुआ सम्यक् दृष्टि देव चिड़िया के रूप में बने हुए उस ज्योतिषी देव से कहने लगा कि हे प्रिये! मैं किसी दूसरे वन में जाता हूँ, अपनी चोंच से चावलों के कण लाकर जल्दी ही लौटूँगा, तब तक तू मेरी आज्ञा से यहाँ ही रहना।।67-68।।

चिड़ा के रूप में बने हुए सम्यग्दृष्टि ट देव की यह बात सुनकर चिड़िया के रूप से बने हुए उस ज्योतिषी देव ने कहा कि हे कान्त! तेरे लौटने का मुझे विश्वास नहीं है, क्योंकि जब मनुष्य पर स्त्रियों के द्वारा रुक जाते हैं तब वे अपनी स्त्रियों का स्मरण तक नहीं करते हैं।।61।।

यदि आपके हृदय में लौटने की इच्छा ही है तो हे प्रभो! मुझे सौगन्ध दे जाइये। आप यह निश्चय रखें कि बिना सौगन्ध दिये मैं आपको कभी नहीं जाने दूँगी।।70।।

चिड़िया की इस बात को सुनकर चिड़ा ने कहा कि यदि मैं लौटकर न आऊँ तो मुझे हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँचों पापों को करने वाले को जो पाप लगता है वह मुझे भी लगे। अथवा जुआ खेलना, मांस खाना, शराब

पीना, वैश्या सेवन करना, शिकार खेलना, चोरी करना आदि सातों व्यसनों के सेवने वालों को जो पाप लगता है वह मुझे लगे। अथवा गाय की हत्या, बालक की हत्या, ब्राह्मण की हत्या, मुनि की हत्या, आदि घोर हिंसा करने वाले मनुष्यों को जो पाप लगता है वह मुझे लगे। अथवा बहिन बेटी के साथ व्यभिचार करने वालों को जो पाप लगता है वह मुझे लगे। अथवा रात्रि में भोजन करने वालों को जो पाप लगता है वह मुझे अथवा अशुद्ध व बिना छना पानी पीने वालों को जो पाप लगता है वह मुझे लगे। अथवा बड़े-बड़े वनों में दावानल अग्नि देने वालों को जो पाप लगता है वह मुझे लगे अथवा दूसरों की निंदा करने वालों को जो पाप लगता है वह मुझे लगे। इन सब सौगन्धों में से जो मुझे पसन्द हो वहीं सौगन्ध मैं तुझे दे सकता हूँ।।71-73।।

चिड़ा की यह बात सुनकर माया से बनी हुई वह चिड़िया अपने चिड़े से कहने लगी कि ''हे नाथ! इन सौगन्धों में से मुझे कोई पसन्द नहीं है। इससे कुछ अधिक सौगन्ध देनी चाहिए।।74।।''

चिड़िया की यह बात सुनकर वह चिड़ा कहने लगा कि हे ''हे प्रिये! तेरे मन में जो सौगन्ध है उसको तू कह डाल। तेरा विश्वास करने के लिए मैं तुझे यहाँ वही सौगन्ध दे जाऊँगा''।।75।।

इसके उत्तर में उस चिड़िया ने कहा कि ''अच्छा हे नाथ! आप मुझे यह सौगन्ध दीजिए कि यदि मैं लौटकर न आऊँ तो इस जमदग्नि मुनि की जो होनहार गति है वह मुझे प्राप्त हो''।।76।।

चिड़िया की यह बात सुनकर वह चिड़ा कहने लगा कि इस सौगन्ध को छोड़कर और जो तेरी इच्छा हो सो कह। इसके उत्तर में चिड़िया ने कहा कि मैं और कोई सौगन्ध लेना नहीं चाहती।।77।।

चिड़ा चिड़ी दोनों की इस बातचीत को सुनकर वह तपसियों में मुख्य तपसी जमदग्नि क्रोध से संतप्त हो गया, उसके दोनों नेत्र रूपी कमल लाल हो गये। उसने अपने दोनों हाथों से उन चिड़ा-चिड़िया दोनों पक्षियों को बड़ी कठोरता से

पकड़ लिया और अपनी भारी क्रूरता से वह उन दोनों को मारने के लिए तैयार हो गया परंतु वे दोनों ही पक्षी उसके हाथों से छूटकर देवों के रूप में बनकर उसके सामने आ खड़े हुए।।78-79।।

उन दोनों पक्षियों को इस प्रकार देवों के रूप में देखकर उस जमदग्नि मुनि को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने उन दोनों देवों से कहा कि तुम दोनों कौन हो और तुमने किस कारण से मेरे तप की निन्दा की है।।80।।

जमदग्नि की यह बात सुनकर वे दोनों देव कहने लगे कि आप क्रोध न करें क्योंकि जिस प्रकार छाछ से दूध नष्ट हो जाता है उसी प्रकार इस क्रोध से आपकी सज्जनता नष्ट हो जायेगी।।81।।

हम दोनों देव हैं और आप जो यह तप कर रहे हैं वह आपका अज्ञान है यही समझाने के लिए हम दोनों यहाँ आये हैं क्योंकि जो तप अशुद्ध किया जाता है, अज्ञानतापूर्वक किया जाता है वह दुर्गति का कारण माना जाता है।।82।।

हे जमदग्नि! तू कुमार अवस्था से ही ब्रह्मचारी है इसलिए तेरे कोई सन्तान नहीं है तथा जो मनुष्य सन्तान का घात करने वाला होता है उसकी गति नरक के सिवाय और क्या हो सकती है।।83।।

"इस संसार में जिसके कोई पुत्र नहीं है उसकी गति नहीं हो सकती और स्वर्ग तो उसे कभी मिल ही नहीं सकता।।" हे मूर्ख! क्या तूने यह ऋषियों, का वाक्य नहीं सुना है जो तू व्यर्थ ही क्लेश सहन कर रहा है?।।84।।

इसलिए सब पहले तू किसी कन्या के साथ विवाह कर उसके साथ इच्छानुसार भोगों का सेवन कर, उससे संतान उत्पन्न कर और फिर शुद्ध तपश्चरण धारण कर।।85।।

क्या तूने अपने मत में बात नहीं सुनी है कि मुंडकौशिक तपसी ने बालक अवस्था में ही तपश्चरण धारण कर लिया था परंतु उस तपश्चरण को छोड़कर उसे फिर गृहस्थ बनना पड़ा था।।86।।

देवों की यह बात सुनकर जमदग्नि ने पूछा कि यह कथा किस प्रकार है? इसके उत्तर में वह देव कहने लगा कि एक मुंडकौशिक नाम का तपसी था वह अज्ञानता पूर्वक ही तप करता था।।87।।

वह बालब्रह्मचारी मुंडकौशिक तपसी किसी एक दिन अन्य शुद्ध तपसियों के साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने के लिए बैठा।।88।।

शुद्ध बुद्धि को धारण करने वाले वे अन्य तपसी उस मुंडकौशिक ऋषि का स्पर्श न हो जाए इस डर से चांडाल के समान उसे छोड़कर भोजन करने से उठ खड़े हुए।।89।।

यह देखकर मुंडकौशिक ने उस सब तपसियों से पूछा कि मैं निर्दोष हूँ और इसलिए आप लोगों के साथ भोजन करने के लिए एक पंक्ति में बैठा था। फिर भला आप लोग मुझे छोड़कर एक साथ खड़े हो गये, इसका कारण कहो।।90।।

इसके उत्तर में वे तपसी कहने लगे कि हम लोगों ने तुझे इस समय अपनी पंक्ति से बाहर कर दिया है इसलिए तू स्पर्श करने योग्य नहीं है। अतएव उच्छिष्ट अथवा वमन किये हुए भोजन के समान तुझे छोड़ दिया है।।91।।

यह सुनकर मुंडकौशिक ने फिर पूछा कि आप लोगों ने किस कारण से ऐसा किया है? इसके उत्तर में उन तपसियों ने कहा कि तुमने कुमार अवस्था में ही तप धारण कर लिया है इसी दोष से तुमको अलग कर दिया।।92।।

जो नीच मनुष्य कुमार अवस्था में ही ब्रह्मचर्य धारण कर लेते हैं वे धर्मशास्त्र के अनुसार गाय की हत्या करने वाले पापियों से भी अधिक पापी समझे जाते हैं।।93।।

इसलिए जो मनुष्य पुत्र का मुँह देखकर निर्दोष तपश्चरण धारण करते हैं उनको साक्षात् स्वर्ग गति प्राप्त होती है। तथा जो मनुष्य पुत्र का मुँह देखे बिना ही तप करते हैं उनको नरक गति की प्राप्त होती है।।94।।

जिसका हृदय मिथ्यात्व से भरपूर होता है और अत्यंत राग से जो अंधा हो रहा है वह मुंडकौशिक ऋषि उन तपसियों की ऊपर लिखी बात को सत्य मानकर किसी की कन्या मांगने के लिए अपने तपसियों के आश्रम से बाहर निकला।।95।।

वहाँ से निकल कर वह अपने मामा आदि रिश्तेदारों से कन्या मांगने लगा परन्तु वह बूढ़ा था, कुरूप था और तपसी था इसलिए उसे किसी ने अपनी कन्या नहीं दी।।96।।

जब उस मुंडकौशिक ऋषि को किसी ने कन्या नहीं दी तब वह लज्जित होकर फिर उन तपसियों के समीप आया और उनसे कहा कि मैं बूढ़ा हूँ इसलिए मुझे कोई भी कन्या नहीं देता है अब मैं क्या करूँ।।97।।

मुंडकौशिक की यह बात सुनकर सब तपसियों ने मिलकर अपना शास्त्र देखा और फिर शास्त्र के अनुसार कहा कि नीचे लिखी हुई पाँच प्रकार की स्त्रियों के ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है।।98।।

वे पाँच प्रकार की स्त्रियाँ हैं जिनका पति दीक्षा ले गया हो, अथवा मर गया हो अथवा नपुंसक हो गया हो अथवा खो गया हो अथवा उसे पतित कर दिया हो (जाति से अलग कर दिया हो) यदि ऐसी स्त्रियाँ दूसरा पति कर लेंवे तो तपसियों के शास्त्र में (तपसियों के शास्त्र के अनुसार) कोई दोष नहीं है। इसलिए हे मुंडकौशिक! तू बिना किसी सन्देह के किसी विधवा स्त्री को ग्रहण कर।।99-100।।

उन तपसियों की आज्ञा के अनुसार उस मुंडकौशिक ऋषि ने एक कोई विधवा स्त्री रख ली। सो ठीक ही है क्यों जो मद्यपान किये बिना ही, शराब पिये बिना ही नृत्य करता है यदि वह शराब पिये और नशे में आ जाए तो फिर उसके नृत्य करने का क्या ठिकाना है।।101।।

इस संसार में ऐसे कौन से उत्तम मनुष्य हैं जो स्त्री और सुवर्ण के चक्कर में पड़कर परिभ्रमन न करते हों, मोहित न हो गये हों। इसलिए अपनी आत्मा का

कल्याण करने वाले पुरुषों को वह स्त्री और स्वर्ण का चक्कर छोड़ ही देना चाहिए।।102।।

कामदेव से पीड़ित हुआ वह मुंडकौशिक ऋषि उस अयोग्य विधवा के साथ भोग सेवन करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि विषयों को सेवन करने वाले मनुष्य अपना हित कुछ नहीं जानते हैं।।103।।

जिस प्रकार नीति और ज्ञान से बुद्धि उत्पन्न होती है उसी प्रकार परस्पर अत्यंत आसक्त होने वाले उन दोनों के कुछ ही काल बीत जाने पर छाया नाम की कन्या उत्पन्न हुई।।104।।

रूप और सौभाग्य को धारण करने वाली उस छाया को देखकर महादेव सरीखे देव भी काम से पीड़ित हो जाते थे। फिर भला उसके पास रहने पर तो बात ही क्या है।।105।।

वह छाया अपनी कांतिरूपी सम्पत्ति से संसार भर की समस्त स्त्रियों को जीतती थी, तपाये हुए स्वर्ण के समान उसका वर्ण था और संसार भर में उसके समान वही थी।।106।।

किसी एक दिन वह मुंडकौशिक ऋषि अपने पापों को नाश करने के लिए तीर्थ यात्रा को जाने की इच्छा करने लगा परन्तु उस छोटी पुत्री की रक्षा कहाँ की जाय इसके लिए उसे चिंता उत्पन्न हुई।।107।।

वह विचार करने लगा कि गजराज जैसी चाल चलने वाली छाया यौवन अवस्था को प्राप्त होने वाली है इसलिए किसके पास रखकर उसकी रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि जिसको कन्या दी जाये ऐसा कोई भी मनुष्य विश्वास करने योग्य नहीं दिखता है।।18।।

यदि महादेव को दी जाए तो वह भी कामदेव से पीड़ित होकर अपने आधे शरीर में विराजमान की हुई पार्वती को छोड़कर गंगा का सेवन करता है फिर भला वह मेरी कन्या को किस प्रकार छोड़ देगा।।109।।

यदि विष्णु वा कृष्ण को दी जाए तो वह भी अपनी रानियों में आसक्त होकर

भी गोपियों के साथ रमण करता है और फिर उनको भी छोड़कर अपने हृदय में विराजमान की हुई लक्ष्मी को ही सदा सेवन करता रहता है।।110।।

भला रक्षा करने के लिए ऐसे कृष्ण को अपनी कन्या किस प्रकार दे सकता हूँ क्योंकि रत्न की रक्षा करने के लिए उसे चोर के हाथ में कौन देता है।।111।।

ब्रह्मा ने भी कठिन तपश्चरण किया था परन्तु नृत्य करती हुई तिलोत्तमा को देखकर उस तप को भी नष्ट कर दिया था वह ब्रह्मा भला छाया को कब छोड़ सकता है।।112।।

इन्द्र ने भी अपने अनेक देवांगनाओं के समूह को छोड़कर गौतम ऋषि की प्राण प्यारी अहिल्या का सेवन किया था। फिर भला ऐसा कामी छाया को कब छोड़ सकता है।।113।।

इस प्रकार यदि प्रणाम पूर्वक देखा जाए तो सब परस्त्री सेवन करने वाले ही दिखाई देते हैं। ऐसे लोगों के हाथ में स्त्री रत्न को देना मुझे कभी योग्य नहीं है।।114।।

अपने हृदय में यही विचार कर वह बुद्धिमान मुंडकौशिक ऋषि निर्दोष यमराज के समीप पहुँचा और उसे अपनी कन्या सौंप कर अपनी स्त्री के साथ यात्रा के लिए चला गया।।115।।

गंगा, बनारस, प्रयाग, द्वारिका, गया आदि सब तीर्थों की यात्रा की। फिर लौटकर गृहस्थाश्रम में रहकर दान पूजा आदि छहों कर्मों से उत्पन्न हुए शुभ पुण्य सम्पादन किये और फिर अपने पुत्र को अपना पद देकर वह मुण्डकौशिक ऋषि फिर तप करने के लिए चला गया तथा तप कर शुभ गति को प्राप्त हुआ।।116-117।।

यह कहकर वे दोनों देव उस जमदग्नि तपसी से कहने लगे कि आपके मत में ब्रह्मादिक भी स्त्रियों में आसक्त हैं तथा ब्रह्मचारी भी उसी में लगे हुए हैं इसलिए स्त्री के ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है।।118।।

जिसकी बुद्धि नष्ट हो गई है और जो कामदेव से पीड़ित हो रहा है ऐसा वह

जमदग्नि ऋषि उन देवों की बात को यथार्थ मान कर किसी कन्या के साथ विवाह करने के लिए तैयार हो गया।।119।।

आचार्य कहते हैं कि मिथ्यात्व आदि के वशीभूत होकर धारण किये गये मनुष्यों के अज्ञान तप को बार-बार धिक्कार हो, क्योंकि वह अज्ञान तप जीव को संसार समुद्र के भ्रमरों में ही पटकने वाला है। इसलिए विद्वान् पुरुषों को भगवान जिनेन्द्र देव के कहे हुए वचनरूपी किरणों से प्रकाशित होकर उनको हेय समझकर त्याग कर देना चाहिए।।120।।

विद्वान पुरुषों को मन, वचन काय की शुद्धि पूर्वक अट्ठारह दोषों से रहित भगवान अरनाथ जिनेन्द्र देव का ध्यान करना चाहिए और फिर आगम में कहे हुए श्रेष्ठ आचरणों को पालन करने के लिए निरूपण करने वाला और खण्डेलवाल नाम की उत्तम जाति में उत्पन्न हुए हेमराज के द्वारा पूज्य ऐसे धर्म की आराधना करनी चाहिए।।121।।

इस प्रकार आचार्य श्री सकलचंद्र के आज्ञाकारी भट्टारक श्री रत्नचंद्र विरचित विद्ववर श्री तेजपाल की सहायता से निर्मापित तथा खण्डेलवाल जाति के पाटणी गोत्ररूपी आकाश के सूर्य ऐसे सेठ श्री हेमराज नाम के चिन्ह से सुशोभित ऐसे इस सुभौम चरित्र में जमदग्नि तपसी को तपश्चरण से च्युत होने का वर्णन करने वाला यह दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

तीसरा सर्ग

परशुराम और इन्द्रराम राज्य लाभ वर्णन

अथानंतर- वह जमदग्नि तपसी उन दोनों देवों का उपकार मानकर और तपश्चरण को छोड़कर चला सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियों में आसक्त होने वाले पुरुषों का अज्ञानतापूर्वक किया हुआ तपश्चरण नष्ट ही हो जाता है।।1।।

वहाँ से चलकर वह जमदग्नि विचार करने लगा कि ''अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, क्या उपाय करूँ और मुझे कन्या किस प्रकार प्राप्त हो सकती है।।2।।''

मैं बूढ़ा हूँ, कुरूप हूँ, तपसि हूँ और दरिद्र हूँ ऐसे मुझे, ऐसा कौन राजा है जो गुणों से परिपूर्ण अपनी पुत्री को दे देगा।।3।।

वह जमदग्नि तपसी इस प्रकार चिंता कर ही रहा था कि इतने में उसे स्मरण आ गया है और मालूम हो गया कि कान्यकुंजपुर नाम के नगर में पारत नाम का राजा मेरा मामा है। उसके सौ कन्यायें हैं। वह मेरा पहले का संबंधी है इसलिए वह मुझे अपनी कन्या दे देगा। उसकी इस प्रकार कि चिंता ठीक ही थी क्योंकि विपत्ति के समय अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए किसी सज्जन का ही आश्रय लेना चाहिए।।4।।

जो भाग्यहीन है, जिसकी स्थिति चंचल है और कन्या मिलने का लोभ जिसे प्रेरणा कर रहा है ऐसा वह जमदग्नि भानजा अपने मामा के पास कुंजपुर नाम के नगर की ओर चला।।6।।

वहाँ के राजा पारत ने अपनी बहिन के पुत्र जमदग्नि को आया हुआ देखकर वस्त्राभूषण से उसका बहुत आदर सत्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि पूज्य पुरुष का आदर सत्कार कौन नहीं करता है? सभी करते हैं।।7।।

राजा पारत ने उसको उत्तम आसन पर बिठाया हाथ जोड़े नमस्कार किया और पूछा कि आप किस लिए यहाँ पधारे हैं।।8।।

हे स्वामिन! आप जो यहाँ पधारे सो आपने बहुत ही अच्छा किया। आपके

पधारने से केवल मेरा घर ही पवित्र नहीं हुआ है किन्तु हम सब लोग पवित्र हो गये हैं।।9।।

जो घर पूज्य पुरुषों के धोये हुए चरणों के जल से पवित्र नहीं होता उस घर को विद्वान लोग शमशान के समान समझते हैं।।10।।

मामा के इस प्रकार विनय पूर्वक कहे हुए वाक्य सुनकर वह निर्लज्ज देवों के द्वारा ठगा हुआ और मोह से अत्यंत मोहित ऐसा वह जमदग्नि कहने लगा कि हे मामा! मुझे अपनी कन्या दो।।11।।

कानों का अत्यंत कड़वे लगने वाले और अत्यन्त निंदनीय ऐसे उस जमदग्नि के वचनों को सुनकर वह राजा पारत अपने मन में विचार करने लगा कि ''यदि इसको कन्या न दी जायेगी तो वह मूर्ख मुझे शाप दे देगा' इसी भय से जिसका हृदय भयभीत हो रहा है और शाप के डर से जो अत्यन्त दुःखी हो रहा है, ऐसे राजा पारत ने उससे भी में कह दिया की ''मेरे सौ कन्याएँ हैं उनमें से जो तुझे चाहेगी उसी उत्तम कन्या को मैं तुझे दे दूँगा।'' उस राजा का डर से इस प्रकार कहना ठीक ही था क्योंकि भयभीत मनुष्य क्या-क्या नहीं कर डालता है।।12-14।।

सज्जन लोग भानजे को पूज्य समझते ही हैं। यदि वह भानजा मुनि या तपसी हो जाए तो फिर कहना ही क्या है। सुवर्ण सदा अच्छा लगता है, यदि व सुगंधित हो जाए तो फिर कहना ही क्या है।।15।।

वह मूर्ख जमदग्नि ऋषि इस प्रकार अपने मामा पारत की आज्ञा लेकर उन कन्याओं के समीप पहुँचा। परन्तु नंगे फिरने वाले उस ऋषि को देखकर सब कन्याएँ भयभीत हो गईं।।16।।

उस समय उस जमदग्नि का रूप भूत के समान दिखाई दे रहा था, आधे जल हुए मुर्दे के समान जान पड़ता था, उसका एक दाँत मुँह से बाहर निकला हुआ था, तपश् चरण से उसका शरीर जल रहा था, उसका मुँह कौए के समान काला हो रहा था, उसके सिर के बाल सुअर के समान कड़े थे। और आँखें

उसकी नीचे को बैठ गई थीं। ऐसे उस जमदग्नि को देखकर व सब कन्याएँ दशों दिशाओं को भाग गईं।।17-18।।

उस समय वह जमदग्नि ऋषि अपने मन में विचार करने लगा कि इस समय मेरी ऐसी अवस्था हो गई, ऐसा न्याय हो गया है मानो कोई बूढ़ी गाय पानी पीने के लिए किसी सरोवर में गई हो परन्तु वहाँ जाकर कीचड़ में फँस गई हो और इस प्रकार वह दोनों ओर से भ्रष्ट हो गई हो।।19।।

न तो मुझे कन्या ही प्राप्त हुई और न मेरा तपश्चरण ही निर्दोष रहा। जिस प्रकार बकरी के गले के स्तन व्यर्थ होते हैं उसी प्रकार यह मेरा जन्म व्यर्थ ही रहा।।20।।

वह जमदग्नि ऋषि उस समय इस प्रकार ही चिंतारूपी पिशाच के जाल में फँस रहा था। और लज्जा के कारण आर्तध्यान से दुःखी हो रहा था। उसी प्रकार उसने धूलि में खेलती हुई एक अकेली कन्या देवी। उसे देखकर वह प्रसन्न हुआ और उसके समीप पहुँच कर एक केला देकर कहने लगा कि यह तेरे बदले की भेंट है, इसे ले। वह कन्या उसके इशारे को समझ नहीं सकती थी। वह केवल उस केले को लेना चाहती थी इसलिए उसने अपना हाथ फैला दिया और कहने लगी कि लाओ दो। सो ठीक ही है क्योंकि लोभ तो सब जीवों के ही रहता है।।21-23।।

उस कन्या को प्रसन्न होते देखकर जमदग्नि ने कहा कि यदि तू मुझे वरण कर ले तो तुझे यह केला दूँ। सो ठीक ही है क्योंकि समय के अनुसार जो कार्य को समझ ले वहीं पण्डित गिना जाता हे।।24।।

वह कन्या कुछ जानती तो थी नहीं इसलिए उसने कह दिया कि यह केला मुझे दो, मैं तुम्हीं को अपना वर बनाऊँगी, मुझे और मनुष्यों से क्या प्रयोजन है।।25।।

उसकी यह बात सुनते ही उस भंयकर जमदग्नि ने उसी समय उस कन्या को गोदी में उठा लिया और राजा से जाकर कहा कि यह कन्या मुझे वरना चाहती है।।26।।

जमदग्नि की यह बात सुनकर राजा पारत का हृदय बहुत दुःखी हुआ परन्तु वह उसके शाप से डर रहा था। इसलिए उसने वह कन्या उसे दे दी। सो ठीक ही है क्योंकि यदि एक वस्तु के जाने पर सब कुशलता पूर्वक बच जाए तो उसे दे देना ही चाहिए।।27।।

इस बात को जानने वाले सब लोग उस समय यही कहते थे कि-''जो लोगों के लिए तप को छोड़कर स्त्री ग्रहण करते हैं वे मूर्ख बहुमूल्य अनेक वर्ण के रत्नों को बेचकर काँच खरीदते हैं।।28।।

उस समय जमदग्नि में पेड़-पेड़ पर लोग यह कहावत कहते थे और पेड़-पेड़ पर उसकी निंदा करते थे। उन सबको सुनता हुआ वह जमदग्नि जिस प्रकार राहु चन्द्रमा की एक कला को ले जाता है उसी प्रकार वह उस कन्या को लेकर वन में चला गया।।29।।

''यह कन्या मुझे रेणु वा धूलि में खेलती हुई मिली है'' यही समझकर उसने उसका नाम रेणुका रखा और गन्धर्व विधि से उसके साथ विवाह कर लिया।।30।।

यह मनुष्य चाहे घर छोड़कर वन में चला जाए, चाहे दीक्षा धारण कर ले और चाहे कितना ही क्लेश धारण करे परन्तु बिना सम्यग्ज्ञान के किसी को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।।31।।

देखो, कहाँ तो वह राजाओं के योग्य सर्वांग सुन्दरी राजपुत्री! और कहाँ वह नीच तपसी परन्तु पूर्व कर्मों का उदय ऐसी-ऐसी न होने वाली घटनाओं को भी सुलभ देता है।।32।।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कह रहे हैं कि राजन! उस निर्धन जमदग्नि से धन धान्य आदि से रहित एक टूटी-फूटी झोंपड़ी बनाई और उसी में वह उस रेणुका के साथ भोगोपभोग सेवन करता हुआ रहने लगा।।33।।

कौए के समान कामदेव से पीड़ित हुआ वह जमदग्नि जिसकी पूर्ण

यौवनावस्था प्रारम्भ हो गई है और स्तनों के भार से जो अलसाई रहती है ऐसी उस रेणुका के साथ रात दिन काम सेवन करने लगा।।34।।

जो "जिन मन्दिर के समीप रहता है, जो पूजा करने वाला मन्दिर में निवास करता है, जो दीक्षा धारण कर फिर उसे छोड़ देता है और जो विधवा आदि पाँच प्रकार की स्त्रियों से उत्पन्न होता है ये सब लोग धर्मिक माने जाते हैं।" इस कहावत को सत्य कर दिखाता हुआ वह निर्दयी जमदग्नि कन्द-मूल फलों का भोजन कर और झरनों का पानी पीकर वहीं पर निवास करने लगा।।35-36।।

इस प्रकार कुछ समय बीत जाने पर उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए वे दोनों ही पुत्र राजाओं में होने वाले गुणों से सुशोभित थे। सो ठीक ही है क्योंकि क्या आलात से (जलती हुई कोयलों की धूलि से) दीपक की निर्मल उत्पत्ति नहीं होती है? अवश्य होती है।।37।।

उनमें से पहले पुत्र का नाम परशुराम था और दूसरे का नाम इन्द्रराम था। वे दोनों ही भाई बड़े-बड़े बलवान योद्धारूपी पर्वतों को नाश करने के लिए वज्र के समान थे और बड़े ही प्रतापी थे।।38।।

वे दोनों भाई अनुक्रम से यौवन अवस्था को प्राप्त हुए और उस समय अनेक गुण रूपी सम्पदाओं से वे बहुत ही शोभायमान हो रहे थे। सो ठीक ही है क्योंकि चन्द्रमा स्वयं ही शोभायमान है फिर यदि वह अपनी पूर्ण कलाओं से उदय हो तो फिर उसकी शोभा का पूछना ही क्या है।।39।।

वे दोनों ही भाई बहत्तर कलाओं के जानकार थे। शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्या दोनों में ही निपुण थे। नीति और पराक्रम दोनों से सुशोभित थे और अपने प्रताप से समस्त संसार को वश करने वाले थे।।40।।

वे दोनों ही भाई सूर्य और चन्द्रमा के समान दैदीप्यमान थे। जिस प्रकार सूर्य चन्द्रमा कांति प्रताप सहित होते हैं उसी प्रकार वे भी कांति और प्रताप सहित थे। सूर्य चन्द्रमा जिस प्रकार सद्वृत्त अर्थात् गोल होते हैं उसी प्रकार वे दोनों भाई भी

सद्वृत्त अर्थात् सदाचार को धारण करने वाले थे सूर्य चन्द्रमा जिस प्रकार लम्बी किरणें धारण करते हैं उसी प्रकार वे दोनों भाई भी लम्बी भुजाओं को धारण करते थे, तथा सूर्य चन्द्रमा जिस प्रकार अन्धकाररूपी शत्रु को नाश करने वाले होते हैं उसी प्रकार वे दोनों भाई भी अपराध करने वाले शत्रुओं का नाश करने वाले थे।।41।।

वे दोनों भाई इक्कीसवार राजाओं के वंश का नाश करने वाले थे, उनका शासन अलंघ्य था अर्थात् उनकी आज्ञा को कोई उल्लंघन नहीं कर सकता था। सब लोक उनको मान्य समझते थे और बत्तीस शुभ लक्षणों से वे सुशोभित थे।।42।।

अथानन्तर- जमदग्नि और रेणुका दोनों ही स्त्री पुरुष अपने दोनों पुत्रों के साथ बड़े प्रेम से रहते थे और समय के अनुसार अच्छे सुख से उनका समय व्यतीत होता था।।43।।

किसी एक दिन रेणुका के बड़े भाई तपोनिधि अरिंजय नाम के मुनिराज अपनी बहिन रेणुका को देखने के लिए पधारे।।44।।

अकस्मात् आये हुए अपने भाई को देखकर वह रेणुका बड़ी ही प्रसन्न हुई सो ठीक ही है क्योंकि मुनिराज के आने से ही लोगों को प्रसन्नता होती है, यदि वे अपने भाई हों तो फिर कहना ही क्या है फिर तो बड़ी ही प्रसन्नता होती है।।45।।

बहिन रेणुका बहुत दिन बाद आये हुए अपने मुनिराज भाई को यथायोग्य रीति से नमस्कार किया और प्रसन्नता से आए हुए आँसुओं की बूँदों से जिसके नेत्र कुछ गीले हो रहे हैं ऐसी वह रेणुका उनके सामने बैठ गई।।46।।

वह रेणुका ने अपने पति के कहे अनुसार अपने भाई से आदर के साथ कहने लगी कि हे महाराज! आप दुःख देने वाली मेरी बुरी अवस्था का हाल सुनिए।।47।।

हे भाई! मेरे घर में खाने-पीने की कोई सामग्री नहीं है जिससे कि मैं किसी का आदर सत्कार भी कर सकूँ।।48।।

न मेरे पास कोई आभूषण हैं, मैं अपना समय बड़े दुःख से व्यतीत कर रही हूँ। हे भाई! आपके सामने मैं अपना हाल कहने में भी असमर्थ हूँ।।49।।

मेरे घर में मेरी बड़ी बहिनें सब राजाओं की रानियाँ हुई हैं परन्तु जिस प्रकार समुद्र में विष भी निकला था उसी प्रकार पूर्व जन्म के अशुभ कर्म के उदय से मेरे पिता ने बिना कुछ विचार किये ही मुझे उद्योग रहित बूढ़े दरिद्र भिक्षुक को दे दी थी।।51-52।।

आपने मेरे विवाह के उत्सव में कुछ धनादिक भी नहीं दिया था इसके लिए अब कुछ इच्छानुसार दान दीजिए जिससे कि मेरा यह रोग (दरिद्ररूपी रोग) नष्ट हो जाये।।53।।

यदि मेरे ऊपर पिता के समान ही ''भाई की भी कृपा न हो तो भी ये दोनों भानजे तो पूज्य ही हैं, कम से कम इनको अनुकूल दृष्टि से तो देखिए।।54।।

दीनता से भरी हुई बहिन की बात सुनकर जिनके हृदय में दया उत्पन्न हुई है ऐसे वे अरिंजय नामक मुनि अपनी बहिन को धर्म धारण करने के लिए उससे कहने लगे।।55।।

वे कहने लगे-''हे भद्रे! हे कल्याण करने वाली! मैं इस समय तुझे धर्म धारण कराना चाहता हूँ। यह धर्म तीनों लोक में भी दुर्लभ है इसलिए तू इसी को धारण कर, इसी से तुझे अनेक सुखों की परम्परा (सदा रहने वाला सुख) प्राप्त होगा।।56।।

इस संसार में भगवान अरिहंत देव को छोड़कर और कोई देव नहीं है, निर्ग्रन्थ गुरु को छोड़कर और कोई गुरु नहीं है और भगवान अरहंत देव के कहे हुए वचनों को छोड़कर और कोई शास्त्र नहीं है। ये देव शास्त्र गुरु तीनों ही पवित्र रत्नत्रय कहलाते हैं।।57।।

इन देव शास्त्र गुरु तीनों का विश्वास करना श्री जिनेन्द्र देव ने व्यवहार सम्यग्दर्शन बतलाया है। इस सम्यग्दर्शन के प्राप्त हो जाने पर जीव न तो दुर्गति में जाता है और न दरिद्र होता है, न स्त्री पर्याय ज्योतिषी धारण करता है, न नपुंसक होता है, न भवनवासी न व्यन्तर इन तीनों अधम देवों में उत्पन्न होता है

न कुभोग भूमि में उत्पन्न होता है, न म्लेच्छ होता है, न विकलत्रय (दो इन्द्रिय ते इन्द्रिय चौ इन्द्रिय) होता है, न कुरूपी होता है न रोगी होता न पृथ्वी जल तेज वायु वनस्पति इन पाँचों स्थावर योनियों में उत्पन्न होता है और न अंग भंग होता है। संसार में जितने भी दुःख के कारण हैं उनमें किसी में भी उत्पन्न नहीं होता है।।58-60।।

मद्य वा शराब का त्याग, मांस का त्याग शहद का त्याग और बड़फल, पीपल फल, गूलर, अंजीर तथा पाकर फल इन पाँचों उदम्बर फलों का त्याग करना गृहस्थों के आठ मूल गुण कहलाते हैं। हे भद्रे! तू इन आठ मूल गुणों के साथ-साथ सम्यग्दर्शन को धारण कर।।61।।

जुआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, शिकार खेलना, चोरी करना, वेश्या सेवन करना और परस्त्री सेवन करना ये सात व्यसन कहलाते हैं। हे बहिन! इनका भी तुझे त्याग कर देना चाहिए।।62।।

अपने प्राणों का नाश हो जाने पर भी त्रस जीवों की हिंसा कभी नहीं करनी चाहिए। अर्थात् मन, वचन, काय की शुद्धता पूर्वक त्रस जीवों की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि भगवान जिनेन्द्र देव के कहे हुए इस दया रूप धर्म के सिवाय संसार में और कोई धर्म नहीं है।।63।।

तू झूठ बोलने का भी सर्वथा त्याग कर। क्योंकि झूठ बोलना अथवा असत्य भाषण करना नरक निगोद आदि दुर्गतियों का कारण है। इस असत्य भाषण के समान कोई भी पाप न हुआ है न होगा।।64।।

इसी प्रकार जो कोई पदार्थ किसी का गिर पड़ा हो, या कोई भूल गया हो अथवा कोई रख गया हो उसे भी नहीं लेना चाहिये। अर्थात् चोरी का भी त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि जो कोई मनुष्य बिना दिये हुए किसी दूसरे के पदार्थ को ले लेता है वह उसके प्राणों को हरण कर लेता है।।65।।

इस समय तुझे बाह्य और अभ्यंतर दोनों प्रकार के परिग्रहों का प्रमाण कर लेना चाहिए। क्योंकि इन परिग्रहों का प्रमाण किये बिना इस जीव की बुद्धि निर्मल रीति से बिना किसी रुकावट के भारी लोभ में फंस जाती है।।66।।

शीलव्रत पालन करना समस्त शरीर का आभरण है तथा यह शीलव्रत ही सब व्रतों में उत्तम है इसलिए तू इसको भी धारण कर। क्योंकि इसके बिना समस्त व्रत नष्ट हो जाते हैं।।67।।

दिग्विति व्रत, देशविरति व्रत और अनर्थदण्डविरति इन तीनों गुणव्रतों को भी तू धारण कर। क्योंकि इन गुण व्रतों के पालन करने से ही इस जीव को सदा निरंतर बना रहने वाला कल्याण होता है।।68।।

इसी प्रकार प्रोषधोपवास व्रत, अतिथि-संविभाग व्रत, भोगोपभोग परिमाण व्रत और सामायिक इन चारों शिक्षाव्रतों को भी तू धारण कर।।69।।

तू रात्रि भोजन का भी त्याग कर, क्योंकि रात्रिभोजन करना निर्दयता से भरा हुआ है विद्वानों के द्वारा यह सदा निन्दनीय है तथा रात्रिभोजन करने वालों के दोष वचनों से भी नहीं कहे जा सकते हैं।।70।।

बिना छना हुआ पानी भी मत पी। क्योंकि बिना छने पानी में असंख्यात जीवों का घात होता है। बिना छने पानी के पीने में जो पाप होता है उसका एक अंश भी सात गाँवों के जलाने के पाप से भी बहुत अधिक होता है।।71।।

धर्म के स्वरूप को न जानने वाली हे बहिन! कन्दमूल भक्षण का त्याग कर, पत्ते रूप शाकों के भक्षण का त्याग कर तथा हींग और अचार आदि का त्याग कर क्योंकि इन सबका भक्षण करना पापों का संचय करने वाला है।।72।।

हे बहिन! इस समय तुझे काललब्धि प्राप्त हुई है इसलिए तू स्वर्ग के सुख देने वाले और निर्दोष ऐसे इन श्रावकों के आचरणों का ग्रहण कर क्योंकि इस संसार में काल लब्धि की प्राप्ति होना ही अत्यंत कठिन है।।73।।

रेणुका ने उन मुनिराज के कहे अनुसार सब व्रत धारण किये तथा उन व्रतों के धारण करने से उन मुनिराज के हृदय में बहुत ही सन्तोष हुआ सो ठीक ही है क्यों इस संसार में अपने बचनों की सिद्धि होने पर किसका सन्तोष नहीं होता है।।74।।

जिनके हृदय में उन व्रतों की रक्षा करने का वात्सल्य उत्पन्न हुआ है ऐसे उन

मुनिराज ने अपनी बहिन के लिए इच्छानुसार फल देने वाली एक कामधेनु नाम की विद्या दी।।75।।

विद्या से बनी हुई इस कामधेनु को मारने के लिए यमराज भी समर्थ नहीं हैं औरों की तो बात ही क्या है। तथा इस कामधेनु का प्रभाव इससे बढ़कर और क्या हो सकता है।।76।।

अब उस रेणुका के घर इच्छानुसार मन की सब अभिलाषाएँ पूर्ण होती थी। सो ठीक ही है क्योंकि व्रतों के पालन करने से स्वर्ग की सम्पदाएँ प्राप्त होती फिर भला कामधेनु का मिल जाना कौन से आश्चर्य की बात है।।77।।

किसी भिखारी के हाथ में दिया हुआ रत्न किस प्रकार ठहर सकेगा अथवा जिसको कोई बुरा भयानक रोग हो रहा है। ऐसे रोगी के पेट में पथ्य किस प्रकार ठहर सकेगा, यह विचार भी मुनिराज के हृदय में उत्पन्न हुआ। इन्हीं विचारों के अनुसार उन मुनिराज ने उस कामधेनु को सुरक्षित रखने की इच्छा से उस अपनी बहिन के लिए मंत्र से सिद्ध किया हुआ एक फरसा भी दिया सो ठीक ही है क्योंकि आपत्ति किस समय आती है यह किसी को भी मालूम नहीं होता।।78-79।।

लिखा भी है "इस संसार में जैसी होनहार होती है वैसी ही बुद्धि उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही सब उद्योग बन जाते हैं और वैसे ही सब सहायक मिल जाते हैं।।80।।

इस प्रकार जैनधर्म में कहे हुए वाक्यों को जो मनुष्य प्रमाण मानते हैं वे मूर्ख या विद्वान किसी पुरुष को भी दोष नहीं दे सकते।।81।।

तदन्तर उन मुनिराज ने अपनी बहिन और बहनोई को आशीर्वाद के वचन कहकर प्रसन्न किया और फिर वे ईर्यापथ शुद्धि के द्वारा अपने यथायोग्य स्थान को चले गये।।82।।

उन मुनिराज ने अपनी बहिन के लिए कामधेनु और फरसा दिया, इसमें विद्वान पुरुषों को विचारशील पुरुषों को कुछ अधिक विचार नहीं करना चाहिए

क्यों यदि किसी सर्प को कोई निर्दयी मनुष्य मारता हो तो क्या दयालु पुरुषों को उसकी रक्षा नहीं करनी चाहिए? अवश्य करनी चाहिए।।83।।

जमदग्नि और रेणुका को जो वह कामधेनु मिल गई थी और उससे जो शरीर को पुष्ट करने वाला, रसीले और उत्तम पदार्थ प्राप्त होते थे उससे वे दोनों ही अपने दोनों पुत्रों का पालन पोषण करने लगे।।84।।

अथान्तर-इसी बीच में काल के द्वारा प्रेरणा किया हुआ अयोध्या नगरी का राजा सहस्रबाहु अपने कृतवीर पुत्र के साथ उसी वन में आया।।85।।

आये हुए सम्बन्धियों को देखकर जमदग्नि के हृदय में उनके ठहराने और आदर पूर्वक भोजन कराने की इच्छा प्रगट हुई।।86।।

उसने अपने मन में विचार किया कि मेरे पुण्य कर्म के उदय से मेरे सम्बन्धी वन क्रीड़ा करने के लिए आए हैं इसलिए उन्हें अवश्य भोजन कराना चाहिए। क्योंकि संसार में वह विभूति किस काम की जो अपने संबंधियों के भी उपयोग में न आ सके।।87।।

यह विचार कर उसने अपनी स्त्री से कहा कि तेरे पुण्य कर्म के उदय से तेरे घर बड़े पाहुने आए हैं इसलिए तू उनके लिये भोजन की सामग्री तैयार कर।।88।।

जमदग्नि की यह बात सुनकर रेणुका ने बाहर निकलकर कहा कि ''हे प्रिय! आप तो बड़े विद्वान हैं फिर भला आपने यह कैसी बात कहीं? हम तो भिक्षुक हैं, राजा महाराजाओं को आदर सत्कार कर भोजन देना हमारे लिए उचित नहीं है।।89।।

घर में रहने वाले गृहस्थ और बिना घर में वन में रहने वाले मुनि विशेष दाता और विशेष पात्र गिने जाते हैं अर्थात् गृहस्थ सदा दाता रहता है और मुनि सदा पात्र रहते हैं। न तो मुनि कभी दाता बन सकता है और न गृहस्थ ही कभी पात्र बन सकते हैं।।90।।

यदि इसके विपरीत विधि की जायेगी तो उसका फल भी विपरीत ही होगा। यदि अनुक्रम से अनुकूलता पूर्वक विधि की जायेगी तो उससे होने वाला कार्य वा फल भी अनुकूल ही होगा।।91।।

आप वर्णाश्रम के अनुसार गुरु हैं, आपका योग्य अन्न पानादिक भी गृहस्थों के ग्रहण करने के योग्य नहीं है। इसलिए आप इस आग्रह को छोड़ दीजिए।।92।।

शास्त्रों में लिखा भी है ''देव द्रव्य को घर में रखकर जो धन बढ़ता है अथवा गुरु के द्रव्य से जो सुख सेवन किया जाता है उस धन से कुल का नाश होता है। और मरने पर भी वह नरक में जाता है।।93।।

यह छहों मतों के शास्त्रों का कथन है और वादी प्रतिवादी सबको मान्य है, आप तो वेद के अच्छे जानकार हैं, क्या आपने यह कथन कभी नहीं पढ़ा है अथवा कभी नहीं सुना है?'' इस प्रकार रेणुका ने अमृत के समान हित करने वाले और पथ्य वचन कहे परन्तु जमदग्नि ने एक न मानी और राजा को निमंत्रण करने के लिए वह चला ही गया सो ठीक ही है क्योंकि जिस पुरुष को कोई रोग होनहार होता है तब उसकी रूचि व उसके मुख का स्वाद कुछ और ही प्रकार का हो जाता है।।94-95।।

अनेक राजा महाराजा जिसे नमस्कार हैं ऐसा वह जमदग्नि ऋषि राजा सहस्रबाहु के समीप पहुँचा उसकी प्रदक्षिणा दी और उसके सामने खड़े होकर याचना की कि आज आप सब लोग मेरे घर भोजन करने के लिए पधारें।।96।।

जमदग्नि की यह बात सुनकर राजा सहस्रबाहु हँसा और हँसकर कहने लगा कि क्या आप भिक्षा भोजन ले आए हैं, जो हमें भोजन करावेंगे।।97।।

इसके उत्तर में जमदग्नि ने कहा कि आपके पधारने के प्रभाव से सब भला ही होगा। इसलिए आप सबके साथ आकर भोजन करें।।98।।

जमदग्नि ने इस प्रकार बड़ी नम्रता से राजा को निमंत्रण दिया और अपने घर लाकर आसनों पर पंक्ति रूप से बिठाकर सबको भोजन कराया।।99।।

जमदग्नि ने राजा को भोजन कराने के लिए अनेक प्रकार के पकवान तैयार कराये थे दूध की खीर, घी में तले हुए अनेक प्रकार के पदार्थ, स्वादिष्ट लड्डू, सुगंधित शालि चावल, बहुत अच्छे बने हुए शाक, गरम-गरम पुए, दूध, दही,

घी आदि के बने हुए अनेक प्रकार के पदार्थ, ईख के रस के बने हुए अनेक प्रकार के पदार्थ तथा और भी बहुत से पदार्थ बनाकर खिलाये। तथा वे सब पदार्थ राजा ने सबके साथ बड़ी चाह से खाये।।100-101।।

भोजन करते हुए राजा के हृदय में यह विचार और आश्चर्य उत्पन्न हुआ कि राजा महाराजाओं के घर भी भोजन की ऐसी सामग्री नहीं मिलती है, फिर भला तपोवन में रहने वाले तपसियों के घर में ऐसी सामग्री कहाँ से आई? इसमें कोई कारण अवश्य है, उसे ढूँढ़ना चाहिए। मालूम होता है यह सामग्री किसी देव की प्रसन्नता से प्राप्त हुई है।।102-103।।

भोजन करने के बाद सहस्रबाहु के पुत्र कृतवीर ने एकांत में बैठकर अपनी माता की छोटी बहिन रेणुका से अपने मन की सब बात पूछी।।104।।

बेचारी रेणुका उस कृतवीर की दुष्टता को क्या समझती थी इसलिए उसने कामधेनु विद्या प्राप्त होने आदिक सब समाचार कह सुनाए। सो ठीक ही है क्योंकि सरल हृदय वाले मनुष्य धूर्त मनुष्यों के लिए हुए भेदभाव को कभी नहीं जान सकते हैं।।105।।

उस रेणुका ने आरम्भ से लेकर विद्या प्राप्त होने आदि के सब समाचार कह सुनाये और फिर कहा कि मेरे घर में जो यह सब सामग्री दिखाई देती है वह सब कामधेनु का प्रभाव है।।106।।

इस संसार में जो पुरुष मायाचारी नहीं होते वे पराभव को प्राप्त होते हैं और जिस प्रकार कवच रहित मनुष्यों के शरीर में घुसकर वाण उन्हें मार देते हैं उसी प्रकार धूर्त मनुष्य उनमें घुसकर उनको मार देते हैं।।107।।

अत्यन्त कृतघ्न वह राजकुमार उस कामधेनु को लेने के लिए तैयार हुआ तथा जिसकी मृत्यु समीप आ रही है ऐसा वह राजकुमार कृतवीर अपने पिता के साथ जाकर जमदग्नि से उस कामधेनु को मांगने लगा।।108।।

आचार्य कहते हैं कि जब कोई कष्ट या दुःख आने वाला होता है तब राजा सहस्रबाहु के समान चतुर मनुष्य की बुद्धि भी विपरीत हो जाती है।।109।।

लिखा भी है-''जब दुःख आने के दिन अत्यन्त समीप होते हैं तब मनुष्यों की बुद्धि बहुत शीघ्र नष्ट हो जाती है देखो ब्राह्मण की कामधेनु गाय को हरण करने का उद्यम करने वाले राजा सहस्रबाहु का बहुत ही बुरा पराभव हुआ था।।110।।

तदन्तर वह राजकुमार कृतवीर जमदग्नि से कहने लगा कि आप तो बहुत बुद्धिमान हैं। आप जानते हैं कि भोजन करने के बाद उत्तम दक्षिणा भी दी जाती है, यह न्याय सब जगह फैला हुआ है।।111।।

अथवा यदि इस बात को अयोग्य भी माना जाए तो भी आप जानते हैं कि मैं आपकी स्त्री की बहिन का पुत्र हूँ और इसलिए मैं आपसे इस गाय को मांगता हूँ।।112।।

कृतवीर की यह बात सुनकर रेणुका ने कहा कि ये तपसी हैं और वर्णाश्रम की अपेक्षा से गुरु है इसलिए इनसे याचना करना ठीक नहीं है, क्योंकि गुरु और तपसी से याचना करना पाप का कारण है।।113।।

जिसकी आत्मा मिथ्यात्व से आच्छादित हो रही है ऐसा पुरुष जिस प्रकार भगवान जिनेन्द्रदेव के कहे हुए वाक्यों को नहीं मानता है उसी प्रकार हित करने वाले और पथ्यरूप ऐसे रेणुका के कहे हुए वचनों को दुष्ट कृतवीर ने भी नहीं माना।।114।।

उस तपसी ने जो कृतवीर को भोजन कराया था और उसी से जो क्रोध उत्पन्न हुआ था उसी क्रोध से वह कृतवीर कहने लगा।

हे रेणुके! संसार में जो बहुमूल्य धन होता है वह राजाओं के ही योग्य होता है। कंदमूल खाने वाले, तपसियों को ऐसी गाय से प्राप्त सामग्रियों का उपयोग करना कभी योग्य नहीं है। यदि कोई गधा दाखों को खाता है तो ऐसा कौन बुद्धिमान है जो उसे न रोके।।115-116।।

इस प्रकार कहकर और सामने खड़े-खड़े रुदन करते हुए जमदग्नि को बड़ी शीघ्रता से मारकर राजकुमार कृतवीर जबर्दस्ती उस गाय को लेकर अपने घर को चला गया।।117।।

अथानन्तर- जमदग्नि के दोनों पुत्र परशुराम और इन्द्रराम दाभ दुव आदि सामग्री लेकर वन से घर को आए। आकर उन्होंने देखा कि पिता के प्राण निकल गये हैं और व किसी के द्वारा मारे गये हैं।।118।।

तदन्तर उन्होंने अपनी माता को देखा। माता भी शोक से दुःखी हो रही थी, अपना पेट पीट रही थी, और हा देव हा देव! कहकर रो रही थी। इस आश्चर्य करने वाली घटना को देखकर दोनों भाईयों ने पूछा कि यह क्या बात है।।119।।

शोक के आँसुओं से जिसके दोनों नेत्र भींग रहे हैं ऐसी उस रेणुका ने राजा सहस्रबाहु के आने के समाचार, उनको भोजन कराने के समाचार, कामधेनु के हरण करने के समाचार और पति के मार देने के समाचार सब कह सुनाये।।120।।

उनको सुनते ही स्वाभाविक पराक्रम को धारण करने वाले उन दोनों भाईयों के हृदय शोकरूपी कीले से फट गये, वे दोनों की शोक से व्याकुल हो गये और जलते हुए क्रोध से लाल हो गये।।121।।

उन दोनों भाईयों ने शोक से दुःखी होने वाली माता को युक्तियों से भरे हुए अनेक प्रकार के वचन कहकर शांत किया। और फिर ''गाय के ग्रहण करने में मार जाना भी पुण्य है'' ऐसा हमारे शास्त्रों में लिखा है यही समझकर उन्होंने अपने तेज फरसे को ध्वजा बनाया तथा प्रलय के समान अनेक तपसियों को साथ लेकर यमराज के समान वे दोनों भाई वहाँ से निकले।।122-123।।

अत्यंत बलवान वे दोनों ही भाई जिस मार्ग से सहस्रबाहु गया था उसी मार्ग से चले और अयोध्या नगर के समीप ही नगर में प्रवेश करते हुए पिता पुत्र दोनों को रोककर खड़े हो गये।।124।।

तदनंतर उन दोनों भाईयों ने राजा सहस्रबाहु से कहा कि हे पापी कृतघ्न! मुनि को मारने वाले सहस्रबाहु! अब तू हमारे सामने खड़ा रह। अब तू भागकर कहाँ जायेगा?।।125।।

हम लोग केवल तुझे ही नहीं मारेंगे किन्तु पुत्र के साथ-साथ तुझे मारेंगे तथा तपसी की हत्या और गाय को ले आना ये जो दोनों बुरे काम किये हैं इनको भी आज समाप्त कर देंगे।।126।।

इस प्रकार गाली देने में तत्पर होने वाले उन दोनों भाईयों ने कृतवीर और सहस्रबाहु के साथ बहुत देर तक युद्ध किया और परशु विद्या के द्वारा, विद्या के द्वारा सिद्धि किये हुए फरसे से उन पिता-पुत्र दोनों का मार डाला।।127।।

वह समय शाम का समय था, उस समय तक भी इन दोनों भाईयों के कोई प्रकार की चोट नहीं लगी थी। वे दोनों ही भाई इन्द्र ओर उपेन्द्र के समान थे, अपनी कीर्ति से उन्होंने सब दिशाएँ सफेद कर दी थीं, पराक्रम भी उनका प्रमाण रहित था और उनके शरीर की क्रांति भी इन्द्र उपेन्द्र के समान थी, ऐसे उन दोनों भाईयों ने अपनी शुभ कर्मों के उदय से जय प्राप्त की, नगर में प्रवेश किया और अपनी भुजाओं के बल से प्राप्त हुए राज्य को स्वीकार कर बहुत सी लक्ष्मी के स्वामी बन गये।।128-129।।

इस प्रकार पुण्य कर्म के उदय से राज्यलक्ष्मी प्राप्त होती है, पुण्यकर्म के उदय से ही भयानक युद्ध के मैदान में भी जय प्राप्त होती है तथा पुण्य कर्म के उदय से ही भव्य और पुण्यशील ऐसा सेठ हेमराज पूज्य हुआ है। इसलिए ऐसे पुण्य को सम्पादन करने के लिए भव्य जीवों को सदा भगवान जिनेन्द्र देव की ही पूजा करनी चाहिए।।130।।

इस प्रकार आचार्य श्री सकलचंद्र के आज्ञाकारी भट्टारक श्री रत्नचंद्र विरचित विद्वद्वर श्री तेजपाल की सहायता से निर्मापित तथा खण्डेवाल जाति के पाटणी गोत्र रूपी आकाश के सूर्य ऐसे सेठ श्री हेमराज नाम के चिन्ह से सुशोभित ऐसे इस सुभौम चरित्र में परशुराम और इन्द्रराम को राज्य की प्राप्ति का वर्णन करने वाला यह तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

चौथा सर्ग

अथानंतर- जिन्हें बहुत बड़े राज्य की महालक्ष्मी प्राप्त हुई है ओर जो सिंह के समान पराक्रमी हैं ऐसे वे दोनों भाई राजा सहस्रबाहु की सन्तान को नाश करने के लिए तैयार हुए।।1।।

उन दोनों के द्वारा दिये हुए दान की विपक्षी होने के कारण भय से अत्यंत भयभीत हुई दरिद्रता न जाने कहाँ भाग गई थी और आकाश के फूल के समान उस देश से ही नष्ट हो गई थी।।2।।

लिखा भी है ''रेणुका का पुत्र परशुराम जिस समय ब्राह्मणों को पृथ्वी दे रहा था उस समय कुलाचल पर्वत ही उसकी सीमा के पत्थर बन गये थे और समुद्र का जल ही दान देते समय छोड़ी हुई जल की धारा बन गई थी ऐसा वह परशुराम सदा जयशील हो''।।3।।

इस प्रकार सब राज्य को ब्राह्मणों का बनाकर वे दोनों भाई बड़े ही शोभायमान हुए थे सो ठीक ही है क्योंकि ऐश्वर्य के उदय को पढ़ाकर ऐसा कौन श्रेष्ठ पुरुष है जो पूज्य पुरुषों की पूजा न करें? अर्थात् ऐश्वर्य को पाकर सभी श्रेष्ठ पुरुषों को पूजा करते हैं।।4।।

वे दोनों भाई शत्रुओं के लिए वज्र के समान थे, जेठ के महीने में तपते हुए सूर्य के समान महान प्रतापी थे। इक्कीस बार क्षत्रियों के वंश को नाश करने वाले थे, और क्रोधित होकर अपने हाथ से अनेक राजाओं के मस्तक काटकर तथा उन मस्तकों की मुण्डमाला बनाकर सब दिशाओं में पत्थर के खम्भों में लटकाने वाले थे।।5-6।।

उन दोनों भाईयों ने अपनी प्रचण्ड भुजाओं से समस्त शत्रुओं के समूह को नाश कर दिया था और इस प्रकार वे दोनों भाई समस्त पृथ्वी का और समस्त लक्ष्मी का अनुभव करते थे।।7।।

अथानंतर- राजा सहस्रबाहु की रानी चित्रमती का बड़ा भाई शांडिल अपनी

विपरीत बुद्धि के कारण और मिथ्यात्व की भरी हुई वासना के कारण तपसियों का व्रत धारण कर तापसी हो गया था।।8।।

जिस समय परशुराम के द्वारा क्षत्रियों के नाश करने का उपद्रव चल रहा था उसी समय राजा की (परशुराम की) आज्ञा के पहले ही लोगों को बिना मालूम किये ही उस शांडिल तपसी ने गर्भिणी रानी चित्रमती को बाहर निकाल लिया था।।9।।

सो ठीक ही है। लिखा भी है सम्पत्ति और विपत्ति महापुरुषों को ही हुआ करती है, छोटे पुरुषों को नहीं होती। चन्द्रमा घटता है और चन्द्रमा ही बढ़ता है। तारागण न घटते हैं न बढ़ते हैं।।10।।

इस प्रकार शास्त्रों में कही हुई बातों को समझा-समझा कर उस शांडिल तपसी ने पति और पुत्र के मर जाने से जो शोक उत्पन्न हुआ था और उससे रो-रोकर जिसने अपने सब कपड़े भिगो लिये थे। ऐसी अपनी बहिन को खूब ही समझाया।।11।।

तदनंतर उस शांडिल ने विचार किया कि संसार में जो निर्भय स्थान हो वहीं पर इस रानी को छोड़ देना चाहिए। यही विचार कर वह शांडिल अपनी बहिन को लेकर सिद्धार्थ नाम के मुनिराज के समीप पहुँचा।। 12।।

वह वहाँ जाकर कहने लगा कि हे भगवन्! दुःख से दुःखी हुए जीवों के आप ही शरण हैं क्योंकि साधुजनों को छोड़कर दुःखी जनों को और कोई ऐसा आश्रय नहीं है।।13।।

तपसियों में मुख्य तपसी ऐसे उस शांडिल ने अपनी बहिन से इस प्रकार कहा। परशुराम और इन्द्रराम की सब करतूत बतलाई और फिर उस गर्भिणी बहिन को उन्हीं मुनिराज के समीप छोड़कर वह वहाँ से चलने लगा। चलते समय उसने अपनी बहिन से कहा कि मेरे मठ में कोई नहीं है। इसलिए मैं वहाँ जाकर फिर लौटकर आता हूँ तब तक तू बिना किसी भय से यहाँ बैठी रहना।।14-15।।

इस प्रकार अपनी बहिन को समझा कर वह तपसी वहाँ से अपने मठ की ओर चला गया परन्तु देवयोग से उसी समय उसके नौ महीने पूरे हो गये थे। इसलिए उसके उसी समय एक उत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ।।16।।

देखो, कहाँ तो चक्रवर्ती का जन्म और कहाँ वह कठिन पृथ्वी। पहले जन्म में जो घोर अशुभ कर्मों का बन्ध किया जाता है उसका उदय होने पर उसका फल भोगना ही पड़ता है वह किसी प्रकार भी छूट नहीं सकता।।17।।

जिस दिन शुभ तिथि थी, जिस समय खोट ग्रह लग्न को नहीं देख रहे थे, शुभ नक्षत्र क्रूर ग्रहों से आक्रांत थे, केन्द्र स्थान शुभ थे। लग्न मिथुन और कन्या के आश्रित थी और वह आठवें तथा छठे घर में थी तथा केन्द्र त्रिकोण में था और राहु बारहवें में था उस समय उसके पुत्र उत्पन्न हुआ।।18-19।।

लिखा भी है कि लग्न जिस समय मिथुन और कन्या के आश्रित हो तथा आठवें और छठे घर में हो, बृहस्पति केन्द्र स्थान में हो वा त्रिकोण में हो तो वह मनुष्य शूरवीर, बलवान, भोगोपभोग सेवन करने वाला होता है, हाथी, घोड़े और छत्र का स्वामी होता है और अनेक पुत्रों वाला होता है।।20।।

जिस समय अपने घर का ग्रह उच्च मार्ग में था और समस्त ग्रह उच्च मार्ग स्थित थे ऐसे शुभ समय में उस चित्रमती के पुत्र उत्पन्न हुआ था।।21।।

उस पुत्र के शंख, चक्र, गदा, छत्र, स्वस्तिक, पंखा आदि बत्तीसों लक्षण विराजमान थे। और वह भरत क्षेत्र का होनहार स्वामी था।।22।।

उसके जन्म समय में तीनों ग्रह अत्यंत उच्च अवस्था में पड़े थे इसलिए वह पुत्र अपने उत्तम समय के आने पर प्रशंसनीय चक्रवर्ती की लक्ष्मी को प्राप्त होने वाला था।।23।।

उस समय चन्द्रमा भी उसकी तुलना को प्राप्त नहीं होता था, क्योंकि चन्द्रमा पक्षपाती है। शुक्लपक्ष में ही उदय होता है कृष्णपक्ष में उदय नहीं होता परन्तु वह पुत्र पक्षपाती नहीं था। किसी का पक्ष नहीं लेता था, उसको एकसी दृष्टि से देखता था। इसी प्रकार चन्द्रमा कलंकी है वह कलंकी नहीं था, चन्द्रमा को राहू

ढक लेता है परन्तु उसे कोई नहीं दबा सकता था, चन्द्रमा निशाकर अर्थात् रात्रि में ही उदय होता है परन्तु वह रात दिन सा उदयरूप रहता था। चन्द्रमा दोषाश्रित अर्थात् रात्रि के ही आश्रित था परन्तु वह पुत्रदोषाश्रित नहीं था। किसी दोष के आश्रय नहीं था, और चन्द्रमा उदय होते समय ही दैदीप्यमान होता है परन्तु वह सदा दैदीप्यमान रहता था। इस प्रकार चन्द्रमा भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता था।।24।।

इसी प्रकार दीपक भी उसकी तुलना को प्राप्त नहीं होता था। क्योंकि दीपक स्थान को काला कर देता है वह अपनी कीर्ति से छहों खण्डों को सफेद करने वाला था, दीपक नीचे की ओर अंधेरा करता है वह कहीं भी अंधेरा वा अन्याय नहीं करता था। दीपक स्नेह या तेल को पी जाता है, परन्तु वह किसी के स्नेह वा प्रेम को नष्ट करता था। और दीपक का नाम कृष्णवर्त्मा (अपने मार्ग को धुँआ से काला कर देने वाला) है परन्तु वह पुत्र कृष्णवर्त्मा अर्थात् अपने मार्ग को काला करने वाला नहीं था। इस प्रकार दीपक भी इसकी समानता नहीं कर सकता था।।25।।

उस बालक के तीव्र पुण्यकर्म के उदय से वनदेवी उसी समय आकर उपस्थित हो गई और उसको लेकर उसका पालन पोषण करने लग गई सो ठीक ही है क्योंकि देवी देवता सब पुण्य के ही आधीन होते हैं।।26।।

जिस-जिस क्रम से उस बालक के शरीर के अवयव बढ़ते जाते थे उसी क्रम से उन अवयवों के बढ़ने की ईर्ष्या से ही क्या मानों उसके गुण बढ़ते जाते थे सो ठीक ही है क्योंकि दूसरों की वृद्धि होना सबको असह्य होता है।।27।।

इस प्रकार चित्रमती रानी के कितने ही दिन बीत गये। तब किसी एक दिन वन देवताओं को साथ लेकर उस चित्रमती ने श्री सिद्धार्थ मुनिराज से पूछा की हे भगवन्! इस बालक का जन्म आपके चरण कमलों के आश्रय में हुआ है इसलिए अनुमान से तो इसके भाग्य का उदय जान लिया है तथापि हे देव! आप इसका शुभाशुभ बतला दीजिए।।28-29।।

चित्रमती का यह प्रश्न सुनकर मुनिराज कहने लगे- हे देवी! अब तू किसी प्रकार की चिंता मत कर। अब तेरे दुःखों के अन्त होने का समय बहुत ही निकट आ गया है।।30।।

यह तेरा बालक इक्ष्वाकुवंश रूपी समुद्र को बढ़ाने के लिए एक चन्द्रमा के समान है। तथा सोलहवें ही वर्ष में सार्वभौम पद को चक्रवर्ती पद को प्राप्त हो जायेगा।।31।।

इस भरतक्षेत्र के छहों खण्डों में रहने वाले जितने राजा हैं, जितने विद्याधर हैं ओर जितने देव हैं उन सब में मिलकर जितना बल है उससे अधिक बल इस बालक में है फिर भला तू व्यर्थ की चिंता क्यों करती है?।।32।।

जलते हुए चूल्हे पर रखे हुए बड़े कढ़ाव में भरे हुए धीमे से गरम-गरम पुओं को अपनी हाथ से निकाल कर यह बालक भक्षण करेगा। यह इसके होनहार चक्रवर्ती पने का चिन्ह है तू इस बात का निश्चय रख। इसलिए अब तू किसी बात का डर मत कर। इस प्रकार उस दुखिनी रानी को उसके होनहार पुत्र के समाचार सुनकर दयालु मुनिराज श्री सिद्धार्थ ने अपना नाम सार्थक किया तदन्तर उस रानी ने फिर पूछा है भगवान्! इस दुःख का कारण क्या है।।33-34।।

इसके उत्तर में मुनिराज कहने लगे- इस बालक का जीव जब पहले भव में राजा भूपाल था तब इसने-अपने मान कर्म के उदय से अत्यंत घोर तपश्चरण किया था परंतु वह तपश्चरण निदान से दूषित किया था। अर्थात् निदान कर उस तप को दूषित कर दिया था।।36।।

आयु के अंत में चारों आराधनाओं की आराधना कर अर्थात् समाधिमरण धारण कर महाशुक्र नाम के स्वर्ग में देव हुआ था। वहाँ पर इतने अनेक प्रकार के सुख भोगे थे और फिर वहाँ से चय कर यहाँ आकर तेरा उत्तम पुत्र हुआ है।।37।।

हे देवी! इसके गर्भ में रहने पर माता-पिता को जो दुःख हुआ है उसका मूल कारण आचार्यों ने निदान ही बतलाया है।।38।।

यह जीव पहले जन्म मे जिन लोगों के साथ मित्रता वा वैर उत्पन्न कर लेता है वह बैर वा मित्रता इस जन्म में आकर करोड़ गुणी भोगनी पड़ती है अर्थात् बैर भी करोड़ गुणा भोगना पड़ता है, और मित्रता भी करोड़ गुणी भोगनी पड़ती है।।39।।

वह रानी चित्रमती श्री मुनिराज के इस प्रकार वचन सुनकर शौक शंका आदि सबसे रहति हो गई सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनों की वाणी इस लोक में भी हित करने वाली होती है।।40।।

तदनंतर तपसी शांडिल ने आकर मुनिराज सिद्धार्थ को नमस्कार किया अपने आने और चित्रमती को ले जाने की सूचना दी और फिर चित्रमती को लेकर अपनी कुटी में चला गया।।41।।

वह बालक अच्छी पवित्र भूमि को स्पर्श करता हुआ उत्पन्न हुआ था इसलिए बड़े उत्सव और प्रेम के साथ उसका नाम सुभौम रखा।।42।।

जिस प्रकार बादलों में छिपा हुआ चन्द्रमा बराबर बढ़ता रहता है उसी प्रकार नीति और पराक्रम से सुशोभित होने वाला तथा रूप सौभाग्य और कांति को धारण करने वाला वह सुभौम छिपी रीति से रहकर ही बढ़ने लगा।।43।।

छन्द शास्त्र, व्याकरण शास्त्र, साहित्य शास्त्र, अलंकार शास्त्र, न्याय शास्त्र, नाटक, ज्योतिष शास्त्र, वैद्यक शास्त्र, धनुषविद्या और नाममाला आदि सब शास्त्र उसने पढ़ें।।44।।

इसी प्रकार निमित्त शास्त्र, संगीत शास्त्र, मणियों की परीक्षा, सुवर्ण की परीक्षा, हाथी की परीक्षा, घोड़े की परीक्षा, गणित शास्त्र, उत्तार शास्त्र आदि अनेक शास्त्र उसने अपने मामा से सीखे।।45।।

अथानंतर- किसी एक समय अयोध्या नगर में तीन उपद्रव हुए- राजा का सबसे उत्तम हाथी मर गया, नगर का दरवाजा गिर पड़ा और भारी भूकंप हुआ।।46।।

अत्यंत अभिमान करने वाले, सिंह के समान पराक्रमी, और ऊपर लिखे तीनों उपद्रवों को देखकर जिन्हें आश्चर्य उत्पन्न हो रहा है ऐसे वे परशुराम और

इन्द्रराम दोनों भाई उन उपद्रवों को देखकर विचार और चिंता करने लगे कि यह एक साथ क्या हुआ?।।47।।

वे विचार करने लगे कि इस हमारे राज्य में हमारा कोई शत्रु नहीं है, इस समय यह समस्त पृथ्वी क्षत्रियों से रहित है फिर भला बिना कारण के हम लोगों का अनिष्ट कैसे हो सकता है।।48।।

यही विचार कर उन दोनों भाईयों ने बहुत शीघ्र निमित्तकुशल नाम के बहुत चतुर निमित्तज्ञानी को बुलाया और उससे उन उपद्रवों का होनहार फल पूछा।।49।।

उस निमित्तज्ञानी ने सब देखभाल कर उन दोनों भाईयों से कहा कि इसी राज्य में आपका कोई शत्रु उत्पन्न हो गया है। इसलिए अब आपको इसका कोई उपाय करना चाहिए।।50।।

आप लोग अपने मन में यह अभिमान न करें कि इस संसार में हमसे अधिक और कोई बलवान नहीं है, क्योंकि यह पृथ्वी अनेक रत्नों से भरी हुई है।।51।।

''उस शत्रु का ज्ञान किस प्रकार हो'' वह जानने की इच्छा हो तो मैं वह भी बतलाता हूँ। आपके द्वारा जो अनेक राजा मारे गये हैं, उनके दाँत जिसके सामने भोजन रूप परिणत हो जायेंगे उसी को शत्रु समझना चाहिए।।52।।

इस प्रकार उस निमित्तज्ञानी के कहे अनुसार उस शत्रु की परीक्षा करने के लिए उन दोनों भाईयों ने सबको भोजन कराने की एक दानशाला बनवाई।।53।।

तथा अपने सब राज्यों में यह घोषणा कर दी कि ''इस समय हमारा एक व्रतोद्यापन है, हमने जो व्रत किया था वह समाप्त हो गया है, उसका उद्यापन और उत्सव किया है, इसलिए मेरे देश में रहने वाले सब लोग अपने स्त्री पुत्र आदि सब कुटुम्ब के साथ भोजन करने के लिए आवे। जो मनुष्य इस उत्सव में भोजन करने के लिए नहीं आवेगा उसको बड़ा भारी दंड दिया जायेगा इस समय सही मेरी आज्ञा है'' इस घोषणा और आज्ञा को सुनकर राज्य के सब लोग भोजन

करने के लिए आए। सो ठीक ही है क्योंकि राजा की आज्ञा असह्य (सहन न करने योग्य) होती है।।55-56।।

मैं पहले भोजन करूँ, मैं पहले भोजन करूँ इसी इच्छा वे सब लोग भोजन करने के लिए पंक्ति रूप से बैठ गये। अधिकारियों ने सबसे पहले उन लोगों को किसी पात्र में रखे हुए वे दाँत दिखलाए। तदनंतर उन्होंने उन सबको अनेक प्रकार के रसों से परिपूर्ण स्वादिष्ट भोजन कराया, यथायोग्य दान दिया और फिर मधुर वचन कह कहकर सबको विदा किया।।57-58।।

इस प्रकार अयोध्या नगर में प्रतिदिन भोजन कराने का उत्सव होने लगा। गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन! इधर सुभौम बालक ने क्या-क्या किया अब यह कथा कहता हूँ।। 49।।

किसी एक दिन सुभौम ने अपनी माता से पूछा कि गाँव के रहने वाले सब लोग मुझे 'शांडिका भानजा' कहकर बुलाते हैं मेरे पिता के नाम से मुझे कोई नहीं बुलाता, सो यह क्या बात है? लोगों के इस प्रकार कहने से मेरे हृदय में बहुत ही दुःख होता है। इसलिए हे माता! अब तू कृपाकर मेरे पिता का सब सम्बन्ध बतला। इस प्रकार सुभौम के पूछने पर रानी चित्रमती ने राजा सहस्रबाहु का पहले से लेकर अब तक का सब वृतांत कह सुनाया। सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः माता पुत्र के वचनों के अनुसार ही चलती है, सब काम उसी की इच्छानुसार करती है।।60-62।।

इस प्रकार माता के कहने पर सुभौम ने अपने पिता के मरने के सब समाचार जाने और श्री सिद्धार्थ मुनिराज के कहे अनुसार उसने अपने चक्रवर्ती होने का भी निश्चय कर लिया।।63।।

तदनंतर उस सुभौम ने अपना रूप छिपा लिया और एक परिव्राजक तपसी का भेष धारण कर लिया। तथा इस प्रकार वह अपने शत्रु को जीतने के लिए घर से चलने लगा। उस समय उसकी माता चित्रमती ने उससे कहा कि- हे पुत्र! अभी तेरा शरीर कोमल है। तेरी आयु भी अभी छोटी ही है और तू अकेला है

तथा तेरे वे दोनों शत्रु बड़े ही बलवान और बड़ी कठिनता से जीते जाने वाले हैं फिर भला युद्ध में तू अकेला उन्हें किस प्रकार जीत सकेगा।।64-65।।

माता की यह बात सुनकर सुभौम ने कहा कि हे माता! तेरी यह युक्ति ठीक नहीं है। देख क्या अग्नि का एक कणा गीले ईंधन से भरे हुए वन को नहीं जला देता है? क्या एक ही सिंह मदोन्मत्त अनेक हाथियों को नहीं मार डालता है? गाढ़ अन्धकार को दूर करता हुआ सूर्य क्या दीपक की अपेक्षा रखता है?

भावार्थ- माता ने कहा था कि तेरा कोमल शरीर है, तेरी आयु छोटी है और तू अकेला है। इन्हीं तीनों बातों का समाधान करने के लिए सुभौम ने तीन उदाहरण दिये हैं। अग्नि का उदाहरण देकर छोटी आयु का सन्देह दूर किया है, सिंह का उदाहरण देकर कोमल शरीर का सन्देह दूर किया है और सूर्य का उदाहरण देकर अकेलेपन का सन्देह दूर किया।।66-67।।

इस प्रकार कहकर उसने फूल के समान अपनी माता के कोमल मन को निश्चल किया और फिर वह बलवान सुभौम अपने चक्रवर्ती होने का विश्वास दृढ़ करने का उद्योग करने लगा।।68।।

अत्यंत बलवान यह बालक सुभौम भूख लगने पर किसी हलवाई की दुकान पर गया और उससे कहने लगा कि मूल्य लेकर खाने के पूआ दे।।69।।

उस हलवाई की कढ़ाई में जो पुआ सिक रहे थे उन गरम पुओं को उस कढ़ाई में से ही ठंडे पुओं के समान हाथ से निकाल कर वह सुभौम खा गया। तथा खाकर अपने घर आ गया है।।70।।

उसने अपनी यह बात अपने मामा और माता से भी कह डाली। तथा होनहार कल्याण से प्रेरणा किया हुआ वह सुभौम अनेक राजपुत्रों के साथ अयोध्या नगर को चल दिया।।71।।

मार्ग में चलते-चलते उसको उसके होनहार कल्याण की सूचना करने वाले शुभ शकुन हुए थे। गधे आदि बुरा बोलने वाले जानवर बाई और बोलते थे तथा

गाय, कन्या, शंख, भेड़ी, जलती हुई अग्नि, फल, पुष्प और मदोन्मत हाथी के द्वारा उठाये हुए घड़े आदि अनेक शुभ शकुन हुए थे। वे सब शुभ शकुन सुभौम ने देखे।।72-73।।

इधर अयोध्या में देवता रोने लगे, दिन में ही तारे दिखाई देने लगे, सब दिशाओं की ओर आग लग गई और उल्कापात होने लगे, ये सब अशुभ चिन्ह शत्रु की इच्छानुसार शत्रु का घात करने वाले थे अर्थात परशुराम और इन्द्रराम का शत्रु (सुभौम) जिनको परशुराम और इन्द्रराम को मारना चाहता था उन्हीं के मारे जाने की सूचना करने वाले थे।।74।।

वहाँ से चलकर वह राजकुमार भोजन करने के लिए भोजनशाला में आकर उपस्थित हुआ। और जिस प्रकार अनेक तारागणों से घिरा हुआ चन्द्रमा शोभायमान होता उसी प्रकार वह राजकुमार अनेक राजकुमारों के साथ सुशोभित होने लगा।।75।।

अपूर्व आकृति को धारण करने वाले उस सुभौम को देखकर सब सभा उठ खड़ी हुई सो ठीक ही है क्योंकि सिंह के आ जाने पर भला हिरण किस प्रकार ठहर सकते हैं।।76।।

उस दानशाला की रक्षा करने वाले अधिकारियों ने सबसे पहले पात्र में रखे हुए दाँत दिखलाए। परन्तु उस महा पुण्यवान की दृष्टि पड़ते ही वे दाँत शालि चावल के रूप में बदल गये।।77।।

इस घटना को देखकर उन अधिकारियों ने बड़ी जल्दी राजा को जाकर खबर दी और निवेदन किया कि निमित्तकुशल नाम के निमित्त ज्ञानी ने जिस पुरुष के लिए कहा था वह पुरुष यहाँ ही आ गया है।।78।।

यह सुनकर परशुराम ने अपने समीप रहने वाले योद्धाओं से कहा कि तुम लोग जाओ और पीछे से कुछ झगड़ा कर उसको पकड़ कर मेरे पास ले आओ।।79।।

बड़े बलवान और यमराज के समान वे दुष्ट योद्धा राजा की आज्ञा पाकर नमस्कार कर कुमार को पकड़ने के लिए निकले।।80।।

जिस प्रकार किसी उद्धत सिंह को घेरकर हिरण खड़े हो जाते हैं उसी प्रकार दुर्वचन कह कर उद्धत होने वाले वे योद्धा चारों ओर से उस कुमार को घेर कर खड़े हो गये।।81।।

तथा सुभौम से कहने लगे- ''तुझे राजा ने बुलाया है जल्दी चल।'' योद्धाओं की यह बात सुनकर सुभौम ने कहा- मैं नहीं आता, वही चला आवे, मैं भी उसके बल को देखना चाहता हूँ।।82।।

यह कहकर सुभौम ने उस योद्धाओं को घूंसों की मार जमाई उनके मस्तकों में से कीचड़ उछल उछलकर गिरने लगी तथा भयरूपी ज्वर के वशीभूत वे सब योद्धा भागकर दशों दिशाओं में जा छिपे।।83।।

यह सब समाचार सुनकर राजा परशुराम अत्यन्त क्रोधरूपी अग्नि से लाल हो गया और अपनी सब सेना तैयार कर कल्प-काल के अन्तिम समय के समान युद्ध करने के लिए उठा।।84।।

सुभौम ने सामने आए हुए अपने पिता की हत्या करने वाले शत्रु को देखा और उद्धत सिंह के बच्चे के समान शीघ्र ही उसके सामने जा पहुँचा।।85।।

उसी समय उसके पुण्यकर्म के उदय से जन्म से लेकर उसकी रक्षा करने वाला भरत क्षेत्र का अधिपति व्यन्तरदेव उसकी सहायता करने की इच्छा से आ पहुँचा।।86।।

उस व्यन्तरदेव ने क्षणभर में मायामयी चारों प्रकार की (हाथी, घोड़े, रथ, पियादे) सेना तैयार कर दी। किसी शत्रु के द्वारा न जीता जा सके ऐसा व राजसिंह सुभौग उस सेना के मध्य भाग में बहुत ही सुशोभित होने लगा।।87।।

उसी समय उसके पुत्र तीव्र पुण्य कर्म के उदय से उसकी रक्षा करने वाले किसी देव ने एक गन्धवारण जाति का मदोन्मत्त हाथी लाकर राजकुमार सुभौम को समर्पण किया।।88।।

जिस प्रकार पूर्वांचल पर्वत पर सूर्य सुशोभित होता है उसी प्रकार उस हाथी पर सवार होकर वह राजकुमार सुभौम सुशोभित होने लगा सो ठीक ही है क्योंकि भाग्य के उदय होने पर फिर इस संसार में ऐसा कौन सा पदार्थ है जो प्राप्त न हो सके? अर्थात् भाग्य के उदय होने पर सभी पदार्थ मिलते जाते हैं।।89।।

युद्ध के बजते हुए बाजों की आवाज से जिनमें अनेक प्रकार की सूचनाएँ दी जाती हैं ऐसी उन दोनों सेनाओं में न्याय पूर्वक युद्ध होने लगा।।90।।

जो योद्धा एक दूसरे की ईर्ष्या से जल रहे थे, अपने अपने स्वामियों के कार्य तैयार करने में तत्पर थे और जिनके हाथ में अस्त्र-शस्त्र लग रहे थे ऐसे वे योद्धा उस युद्ध कर रहे थे।।91।।

वह युद्ध एक समुद्र के समान था, योद्धाओं के घावों से निकले हुए रक्त से ही उसमें पानी भरा था, चारों ओर रथों के साथ-साथ जो हाथी खड़े थे वे पर्वत के समान थे और उनकी सूँडें मछलियों के समान थीं।।92।।

अथवा युद्ध करते हुए वे योद्धा मेघों के समान बादलों के समान सुशोभित होते थे। क्योंकि वे ''मारो-मारो' ऐसी गर्जना कर रहे थे और कानों तक धनुष को खींच कर शत्रुओं पर बाणों की वर्षा कर रहे थे।।93।।

उन दोनों सेनाओं में कहीं तो भालों से व बरछाओं से युद्ध हो रहा था, कहीं पर तलवारों से युद्ध हो रहा था, कहीं पर गदाओं से हो रहा था, कहीं पर बाणों से लड़ रहे थे और कहीं पर परस्पर एक-दूसरे के बाल पकड़ कर लड़ रहे थे।।94।।

कोई योद्धा चोट खाकर मूर्छित हो गया था किसी के घावों से रक्त बह रहा था और अनेक योद्धाओं को मारता हुआ कोई योद्धा अन्तिम श्वासें छोड़ रहा था।।95।।

कितने ही योद्धा चोटी की घात से निकले हुए रक्त से लाल हो रहे थे और वे खड़े हुए धीर वीर योद्धा उस युद्ध में ऐसे जान पड़ते थे मानो लाल-लाल फूले हुए पलाश के वृक्ष ही हों।।96।।

जिसमें अनेक धड़ नाच रहे हैं ऐसे उस युद्ध के मैदान में बाण के लगने से तड़फड़ाता हुआ योद्धा युद्ध के बाजों से उत्तेजित होकर खूब ही नृत्य कर रहा था।।97।।

उस युद्ध में चंचल शरीर को धारण करने वाले शाकिनी, भूतप्रेत आदि नृत्य कर रहे थे। और गीदड़ ऊपर की ओर मुँहकर उसमें से अग्नि निकालते हुए (गरम श्वांसें छोड़ते हुए) बुरी तरह से रो रहे थे।।98।।

उस युद्ध में तीक्ष्ण बड़ी-बड़ी तलवारें, तीक्ष्ण बरछा, भाले आदि अनेक शस्त्रों के ऊपर उठने से सूर्यमण्डल भी प्रभारहित हो गया था।।99।।

उस युद्ध में कितने ही योद्धा मरने के सम्मुख पड़े थे और उनमें से कितने ही अपने शुभ भावों से धर्म-ध्यानपूर्वक सन्यास धारण कर स्वर्ग को सिधार गये थे।।100।।

तथा जिनके हृदय कृष्ण लेश्या से भर रहे हैं रौद्रध्यान में तत्पर हैं और जिनके हृदय में शत्रुता का जोश भर रहा है, ऐसे कितने ही योद्धा मरकर दुःख से भरे हुए नरक में जा पहुँचे थे।।101।।

कितने ही योद्धा अपने निशान पर बाँधी हुई दृष्टि के अनुसार छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणों से गर्जना करते हुए पहाड़ों के समान अनेक मदोन्मत हाथियों को मारकर गिरा रहे थे।।102।।

भय से मूर्छित हुआ कोई योद्धा मूर्च्छा के कारण यही देख रहा था कि मानो देवकन्या ही मुझे उठाकर लिये जा रही है। यही देखकर वह हंसी और उत्सव के साथ अकस्मात् उठ खड़ा होता था।।103।।

जिनके पहिये आदि कितने ही अवयव टूट-फूट गये हैं चारों ओर पड़े हुए रथ उस युद्ध में ऐसे दिखाई पड़ते थे मानो जिनसे कोई धातु बह रही है और जिन पर थोड़ी-थोड़ी धूलि उड़ रही है ऐसे पर्वत ही पड़े हों।।104।।

इस प्रकार वह युद्ध बहुत देर तक चलता रहा था। अन्त में परशुराम ने अपनी सेना को नष्ट होते और भागते हुए देखकर अपना हाथी सुभौम के हाथी

के सामने लाकर खड़ा किया। तदन्तर जिनके हाथियों के पैरों की चोट से रसातल भी टूटा जा रहा है, जो असंख्यात बाण छोड़ रहे हैं, एक-दूसरे को हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर देने वाले वचन कह रहे हैं और जो अत्यन्त क्रोध कर रहे हैं ऐसे वे दोनों ही योद्धा एक दूसरे को बुलाते हुए युद्ध करने लगे।।105-107।।

सुभौम ने परशुराम के हाथी के मस्तक में एक तीक्ष्ण बरछा मारा जिससे हाथी का मस्तक फट गया और वह पीछे को लौटने लगा। यह देखकर परशुराम ने समझ लिया कि इस युद्ध में शत्रु को जीतना अत्यन्त कठिन है।।108।।

तब उसने शत्रु को मारने की इच्छा से मन्त्र से सिद्ध किये हुए फरसे की विद्या का स्मरण किया परन्तु जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री पति को छोड़कर क्षणभर में ही भाग जाती है उसी प्रकार वह विद्या भी परशुराम को छोड़कर शीघ्र ही भाग गई।।109।।

उसी समय सुभौम के हाथ पर चक्ररत्न उत्पन्न हो गया उस चक्ररत्न की प्रभा दैदीप्यमान हो रही थी और एक हजार यक्ष उसकी रक्षा कर रहे थे ठीक ही है क्योंकि शुभ कर्मों के उदय होने पर क्या-क्या नहीं होता है अर्थात् सब कुछ हो जाता है।।110।।

उसी समय आकाशवाणी हुई कि जिसके एक हजार आरे स्पष्ट और दैदीप्यमान हो रहे हैं ऐसे इस हाथ पर रखे हुए चक्र को दोनों शत्रुओं पर छोड़।।111।।

वह चक्रवर्ती राजा सुभौम उस चक्र से बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने उसी समय में परशुराम और इन्द्रराम दोनों को परलोक भेज दिया।।112।।

उस समय चारों ओर लोगों के मुख से जय-जय शब्द निकल रहा था, सो ठीक ही है, क्योंकि लोक द्वितीय के चन्द्रमा को नमस्कार करते हैं, पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रमा को कोई नमस्कार नहीं करता।।113।।

उस समय जो ऊपर आकाश में ही दुन्दुभि बजा रहे थे ऐसे देवरूपी बादल आकाश मार्ग से ही राजा सुभौम के ऊपर जय-जय शब्दों से मिली हुई फूलों की वर्षा कर रहे थे।।114।।

अन्याय से उपार्जन किया हुआ धन आदि बड़े यत्न से भी सुरक्षित रखा जाय तो भी पन्द्रह वर्ष तक रहता है। सोलहवें वर्ष के लगते ही वह मूल सहित नष्ट हो जाता है। इस कहावत को लोगों के मुख से सुनते हुए उस राजा सुभौम चक्रवर्ती ने बची हुई सेना के लिए अभय घोषणा कर दी।।115-116।।

जिस प्रकार प्रलय काल हो जाने के बाद छिपे हुए लोग बाहर निकलकर सुखी होते हैं उसी प्रकार परशुराम के भय से छिपकर जहाँ कहीं रह सके थे वे सब राजा सुभौम का आश्रय पाकर सुखी हो गये।।117।।

उस राजा सुभौम के पुण्यकर्म के उदय से छत्र, असि (तलवार) दण्ड और चक्र ये चार रत्न उसकी आयुधशाला में उत्पन्न हुए थे।।118।।

कांकिणी, चर्म और मणि ये तीन रत्न उसके श्रीगृह में उत्पन्न हुए थे तथा पुरोहित, गृहपति, स्थपति, सेनापति, हाथी, घोड़ा, और कन्या ये सात सजीव रत्न विद्याधर लोग विजयार्द्ध पर्वत पर से लाए थे। इसी प्रकार नदी के गिरने के स्थान पर उत्पन्न हुए नौ निधियों का भी गणामर जाति के देव लाए थे।।119-120।।

भगवान अरनाथ तीर्थंकर के बाद दो सौ करोड़ बत्तीस वर्ष बीत जाने पर वह सुभौम चक्रवर्ती हुआ था?।।121।।

उसकी साठ हजार वर्ष की आयु थी, अठाइस धनुष ऊँचा शरीर था, तपाये हुए सुवर्ण के समान उसके शरीर की कांति थीं और वह इक्ष्वाकु वंश में सिंह के समान उत्पन्न हुआ था।।122।।

देखो, इस धर्म के प्रभाव से छहों खण्डों की विभूति को प्राप्त करने वाला और समस्त राजाओं के द्वारा पूज्य ऐसा चक्रवर्ती का पद प्राप्त होता है तथा धर्म के ही प्रभाव से इन्द्र धरणेन्द्र आदि के द्वारा जिनके चरण कमलों की सेवा की जाती है ऐसे तीर्थंकर का पद प्राप्त होता है। यही समझकर खण्डेलवाल जाति में उत्पन्न हुए और पाटणी गोत्र को सुशोभित करने वाले दयालु हेमराज आदि भव्य

जीवों की पुण्य कर्म के उदय से प्राप्त हुए इस धर्म को अवश्य पालन करना चाहिए।।123।।

इस प्रकार आचार्य श्री सकलचन्द्र के आज्ञाकारी भट्टारक श्री रत्नचन्द्र विरचित विद्वद्वर श्री तेजपाल की सहायता से निर्मापित तथा खण्डेलवाल जाति के पाटणी गोत्ररूपी आकाश के सूर्य ऐसे सेठ श्री हेमराज नाम के चिह्न से सुशोभित ऐसे इस सुभौम चरित्र में सुभौम चक्रवर्ती के विजय का वर्णन करने वाला यह चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

पाँचवां सर्ग

चक्रवर्ती दिग्विजय वर्णन

अथानन्तर- जिस प्रकार तारागणों से चन्द्रमा सुशोभित होता है उसी प्रकार चक्रवर्तियों में आठवाँ चक्रवर्ती वह राजा सुभौम सैंकड़ों राजाओं से सुशोभित हो रहा था।।1।।

पूजा की विधि को जानने वाले उस चक्रवर्ती दिग्विजय करने के लिए गंध पुष्प अक्षत आदि के द्वारा उस चक्र की पूजा की।।2।।

उस चक्रवर्ती की आज्ञा से रथपति ने उसी समय एक सुवर्ण का रथ बनाया जो कि फहराती हुई अनेक ध्वजाओं से सुशोभित था और मणियों के बने हुए घण्टों से बहुत ही सुन्दर जान पड़ता था।।3।।

अत्यन्त प्रतापी वह राजा सुभौम चक्रवर्ती उस रथ में बैठकर बहुत ही सुशोभित होने लगा, सो ठीक ही है क्योंकि सूर्य स्वयं ही दैदीप्यमान है यदि फिर शरद ऋतु आ जाए तो फिर कहना ही क्या है, शरद ऋतु में तो बहुत ही दैदीप्यमान होता है।।4।।

चलते समय जो दुंदुभि बज रहे थे वे बादलों की गर्जना के समान जान पड़ते थे और अपनी-अपनी सामग्री के उत्सव से आनंदित होने वाला योद्धा रूपी मयूर उस बाजे को सुन-सुनकर नृत्य कर रहे थे।।5।।

जिन्होंने अपने हाथ से शस्त्र उठा रखे हैं ऐसी पैदल चलने वाली सेना सबसे आगे थी। उसके पीछे चंचल घोड़ों की सेना थी, उसके पीछे रथ और उनके पीछे हाथी थे।।6।।

इस प्रकार की सेना चक्रवर्ती के चारों ओर चल रही थी तथा देव विद्याधर और उनके राजा उस समय उसके चरण कमलों की सेवा कर रहे थे।।7।।

देवों के द्वारा होने वाले जय जय शब्द और पुष्पों की वर्षा से जो पूज्य हो रहा है। ऐसा वह चक्रवर्ती शुभ मुहूर्त में चला और सबसे पहले पूर्व दिशा की ओर चला।।8।।

दण्ड रत्न के द्वारा साफ किए हुए मार्ग में वह भारी सेना चलने लगी तथा अनेक देशों को जीतती हुई गंगा नदी के किनारे जा पहुँची।।9।।

तदन्तर उस चक्र के द्वारा अनेक देशों को जीतती हुई वह सेना गंगा के किनारे चलने लगी और अन्त में आगे के देशों को जीतने की इच्छा से कुछ दिन तक समुद्र के किनारे ठहर गई।।10।।

वह चक्रवर्ती राजा सुभौम जिस जिस देश में पहुँचा वहीं के राजा तेजहीन हो गये, बहुत शीघ्र उसकी आज्ञा मानने लगे और अनेक प्रकार की भेंट देकर उसको नमस्कार करने लगे।।11।।

विजय प्राप्त करने वाली वह सेना समुद्र के किनारे फैल गई मध्यवर्ती अनेक अभिमानी राजाओं को उसने जीता।।12।।

लवण समुद्र में जहाँ गंगा नदी गिरती है उसके समीप ही जो सघन छाया का वन है उसी में कपड़े के अनेक डेरा डालकर चक्रवर्ती ने अपनी सेना ठहराई।।13।।

तदन्तर वह चक्रवर्ती मागधदेव को जीतने के लिए तत्पर हुआ। उस धीर वीर ने स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण कर तीन उपवास किये और डाभ के आसन पर आसन लगाया।।14।।

पुरोहित जिसके साथ हैं और जो सिद्ध होने वाली विद्याओं के कार्य को अच्छी तरह जानता है ऐसे उस चक्रवर्ती राजा ने सबसे पहले उसके योग्य मंत्रों का उत्तम जप कर परमेष्ठी की पूजा की।।15।।

फिर सेना की रक्षा करने के लिए सेनापति को वहीं छोड़ा, और स्वयं पूज्य पुरुषों के अजितंजय नाम के रथ में विराजमान हुआ।।16।।

गंगा नदी के दरवाजे की नाली के मार्ग से उस चक्रवर्ती ने लवण समुद्र में प्रवेश किया और बारह योजन चलने के बाद रथ में बैठे ही बैठे वहीं ठहर गया।।17।।

सब निधियों के स्वामी राजा सुभौम ने वहीं से अपना नाम का एक बाण छोड़ा। उस बाण में लिखा हुआ था कि "मैं राजा सहस्रबाहु का पुत्र सुभौम नाम का चक्रवर्ती हूँ इसलिए मेरे अधीन होने वाले स्थानों के निवासी सब देव मेरे वश हो जाओ।" वह बाण व्यंतरों के स्वामी मागधदेव की सभा में जाकर पड़ा। उस बाण को देखते ही व्यंतरों के नायक मागधदेव को क्रोध उत्पन्न हुआ परन्तु नीति के वचन कहकर सभासद लोगों ने उसे समझाया और शांत किया तब कहीं जाकर वह चक्रवर्ती के वश हुआ।।18-20।।

उसी समय चक्रवर्ती के समीप आया और उसने रत्नों की माला, मोतियों का हार और दो कुण्डल भेंट दिये तथा नमस्कार किया सो ठीक है क्योंकि जो दूसरों के वश हो जाते हैं उनकी ऐसी ही हालत होती है।।21।।

तदनंतर वह चक्रवर्ती वहाँ से लौट और दक्षिण दिशा को जीतने के लिए पृथ्वी को हिलाता हुआ समुद्र के किनारे-किनारे चलने लगा।।22।।

जिसके शुभ कर्मों का उदय हो रहा है ऐसे उस चक्रवर्ती राजा ने अपने पुरुषार्थ से ही अंग, मगध, काश्मीर, कलिंग, कुरुश्रांगल, विदर्भ, कौशल, अवन्ती, पुंड्र, औंड्र, गौड, मन्द्रक, दर्शाण, उशीर, कच्छ, वत्सक, मरु और भोटक आदि पूर्व दिशा के सब देश अपने वश कर लिए थे और वहाँ के राजाओं के द्वारा दिये हुए बहुमूल्य मणि, कन्यारत्न, हाथी, घोड़े, मोती और अलंकार आदि बहुत से पदार्थ भेंट में लिए थे।।23-25।।

वह चक्रवर्ती राजा चलते-चलते वैजयन्त नाम के दरवाजे पर जा पहुँचा और जिस प्रकार मागधदेव को वश किया था उसी प्रकार परमेष्ठी की पूजा जप आदि कर वर्तन नाम के देव को वश किया।।26।।

चक्रवर्ती के नाम का बाण पड़ते ही वह देव उसके समीप आया और रत्नकंकण (रत्नों के कड़े) गले में डालने की माला, कवच, मुकुट और करधनी उसको भेंट दी।।27।।

इस प्रकार दक्षिण दिशा को जीतकर पश्चिम दिशा की ओर के समस्त देशों के राजाओं को जीता तथा प्राप्त हुई कीर्ति से सबको श्वेत कर दिया फिर चलकर वह चक्रवर्ती सिंधु नदी के दरवाजे पर जा पहुँचा।।28।।

वहाँ पर भी राजा सुभौम ने मागध के समान दैदीप्यमान प्रभासु नाम के देव को जीता और उससे कल्पवृक्षों से प्राप्त हुई माला भेंट में ली।।29।।

फिर वह राजा वहाँ से भी लौटा और उत्तर दिशा के राजाओं के समुदाय को वश करने के लिए वह विजयार्द्ध पर्वत के समीप आ पहुँचा।।30।।

उसने अपनी सामर्थ्य से ही विजयार्द्ध पर्वत पर रहने वाले व्यन्तरों के नायक मुख्य देव को अपने वश कर लिया था सो ठीक ही है क्योंकि पुण्य कर्म के उदय से कोई भी पदार्थ असाध्य नहीं रहता है।।31।।

विजयार्द्ध पर्वत के देव ने भी आकर उस चक्रवर्ती को रत्नों का बना हुआ शृंगार, उत्तम छत्र, दिव्य सिंहासन, चामर और रत्नों की माला आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ भेंट में दिये।।32।।

तदनन्तर चक्रवर्ती ने विजयार्द्ध पर्वत के पश्चिम की ओर के दरवाजे के समीप जाकर सैकड़ों वृक्षों से भरे हुए उसके निकटवर्ती वन में अपनी सेना ठहराई।।33।।

राजा सुभौम ने गंगा और सिंधु दोनों महानदियों के मध्यवर्ती समस्त देशों में अपनी आज्ञा सुनाई और सबसे नमस्कार कराया।।34।।

तदनंतर सेनापति ने चक्रवर्ती की आज्ञा लेकर, पवनंजय नाम के घोड़े पर चढ़कर और पश्चिम दिशा की ओर मुँह करके खड़ा होकर दण्ड रत्न के द्वारा गुफा का (वह गुफा 12 योजन चौड़ी थी) द्वार फोड़ा तथा विजयार्द्ध पर्वत की गुफा पर से बारह योजन पृथ्वी गिरा दी।।35-36।।

तदनंतर सेनापति ने अपनी शूरवीरता से म्लेच्छ देश के सब राजाओं को वश में किया और बोझ ढोने वाले मजदूरों के समान मस्तक पर भेंट ले लेकर सबको चक्रवर्ती के पास भेजा और सबसे नमस्कार कराया।।37।।

तदनंतर चक्रवर्ती ने तमिस्रा नाम की गुफा के दोनों बाजुओं में मणि और काकिणी रत्न से सूर्य और चन्द्रमा लिखे तथा उनके प्रकाश से सब सेना उसमें होकर चली।।38।।

उत्तर की ओर के म्लेच्छ खण्डों में रहने वाले अत्यंत अभिमानी और युद्ध में अजेय (जो जीते न जा सके) ऐसे चलित और आवर्त्त नाम के देवों को भी जयनास्त्र से जयन नाम के शस्त्र से जीता।।39।।

उस बलवान चक्रवर्ती ने बादलों का सा आडंबर धारण करने वाले तथा युद्ध करने वाले मेघकुमारों को भी चर्मरत्न और छत्ररत्न के द्वारा वश में किया।।40।।

अत्यन्त बलवान ऐसे चक्रवर्ती ने गणबद्ध नाम के देवों को भी अपने वश में किया और उनके द्वारा भेंट में दिये हुए समस्त सारभूत पदार्थ ग्रहण किये।।41।।

वहाँ से निकल कर राजा सुभौम ने सिन्धु नदी के किनारे के सब देवों और सब राजाओं को अपने वश किया तथा अन्त में सिंधुदेवी को वश किया।।42।।

वहाँ पर सिंधुदेवी ने चक्रवर्ती का अभिषेक किया और प्रसन्न होकर दैदीप्यमान रत्नों से जड़ा हुआ एक बहुत ऊँचा सिंहासन दिया।।43।।

तदनंतर अनुक्रम से चलता हुआ वह चक्रवर्ती हिमवान पर्वत के समीप जा पहुँचा और उस पर रहने वाले व्यन्तर देव को अपने आधीन कर वश किया।।44।।

वहाँ से चलकर गंगादेवी को वश किया, भेंट में उससे एक सिंहासन लिया और फिर वृषभाचल के पास आकर उस पर अपना नाम लिखा।।45।।

जिसने समस्त भूमिगोचरी राजाओं से और समस्त विद्याधरों से नमस्कार करा लिया है ऐसा वह चक्रवर्ती राजा बाकी के सब म्लेच्छ देशों को तथा विजयार्द्ध पर्वत को जीतकर उधर से लौटा।।46।।

तदनंतर उस बुद्धिमान चक्रवर्ती राजा सुभौम के कैलाश पर्वत पर आकर सुवर्ण के बने हुए जिन मंदिरों में जो रत्नों की प्रतिमाएँ विराजमान थीं उनकी पूजा की।।47।।

बुद्धिमानों को चक्रवर्ती के दिग्विजय का क्रम महापुराण (आदिपुराण) में कहे अनुसार समझ लेना चाहिए। यही समझकर अल्प बुद्धि को धारण करने वाले मैंने यहाँ पर यह विषय विस्तार से नहीं लिखा है।।48।।

कैलाश पर्वत के चारों ओर गंगा नदी को देखकर चक्रवर्ती ने पुरोहित से पूछा-इस कैलाश पर्वत की रक्षा करने के लिए यह खाई किसने बनाई है।।49।।

चक्रवर्ती की बात सुनकर पुरोहित कहने लगा इस पर्वत पर पहले भरत चक्रवर्ती ने चौबीस तीर्थंकर के जिन मन्दिर बनवाये।।50।।

तदनंतर आपके ही कुल में महा बुद्धिमान दूसरा चक्रवर्ती सगर हुआ था। उसके पुत्रों ने इन मन्दिरों की रक्षा करने के लिए गंगा को लाकर खाई के रूप में बना दिया।।51।।

पुरोहित की यह बात सुनकर चक्रवर्ती ने कहा कि इसकी सब कथा कहो। यह सुनकर पुरोहित भव्य जीवों को आनन्द उत्पन्न करने वाली और सुनने योग्य सगर चक्रवर्ती की कथा कहने लगा।।52।।

इसी भरतक्षेत्र के अयोध्या नगर में राजा भरत के वंश में सगर चक्रवर्ती हुआ था। वह सगर छहों खंड पृथ्वी का स्वामी था और अपने प्राणों से उसने अपने भाग्य का उदय विस्तृत कर दिया था।।53।।

उस पुण्यवान चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्र थे और वे ऐसे थे कि मानो विधाता ने पुत्रों के आकार में उसके गुण ही प्रगट कर दिये हों।।54।।

किसी एक दिन उसी नगर के समीप सिद्ध वन में मुनिराज चतुर्मुख के घातिया कर्मों का नाश हो जाने से दैदीप्यमान केवलज्ञान प्रगट हुआ था।।55।।

उनका केवलज्ञान कल्याणक करने के लिए बहुत से देव आये थे और उनके साथ साथ सोलहवें अच्युत स्वर्ग से बड़ी ऋद्धि को धारण करने वाले मणिकेतु नाम का देव भी आया था, वह पहले जन्म में सगर के जीव का मित्र था, उसने अवधिज्ञान जोड़कर देखा कि यह मेरा मित्र सगर पुण्य कर्म के उदय से चक्रवर्ती हुआ है और बाकी बचे हुए पुण्य के उदय से भोगोपभोग सेवन करने में तल्लीन हो रहा है। इसलिए अब इस मित्र को समझाना चाहिए। यही जानकर वह सगर से कहने लगा।।56-57।।ह्य

''हे मित्र! तू स्मरण कर कि पहले अच्युत स्वर्ग में ही हम तुम दोनों मित्रों ने प्रतिज्ञा की थी कि हम दोनों में से जो पहले चयकर पृथ्वी पर आकर मनुष्य जन्म धारण करेगा उसे पीछे यहाँ स्वर्ग में रहने वाला देव अवश्य समझावेगा। (समझा कर तप धारण करायेगा)।।58।।

इसलिए अब तू उठ और संयम धारण कर। दुःख देने वाले इन भोगों में कोई सार नहीं है।'' जिस प्रकार पित्तज्वर वाला मनुष्य अमृत को भी कड़वा समझकर छोड़ देता है उसी प्रकार सगर ने भी उस समय मणिकेतु की बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया।।59।।

इस प्रकार मणिकेतु ने सगर का अभिप्राय जान लिया और दूसरी बातचीत करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि विद्वान् लोग किसी का हित करने के लिए उसके विपरीत नहीं चलते हैं।।60।।

''सर्प के फण के समान इन भोगों को भी बार-बार धिक्कार है क्योंकि विद्वान् लोगों से भी ये नहीं छोड़े जाते हैं'' इस प्रकार विचार करता हुआ और अपने हृदय में विरक्त होकर दुःखी होता हुआ वह मणिकेतु देव अपने स्वर्ग को चला गया।।61।।

किसी दूसरे दिन अपने मित्र सगर को समझाने के लिए उस मणिकेतु देव ने एक दूसरा उपाय सोचा। उसने अपना रूप कुमार अवस्था का बनाकर मुनिभेष धारण किया, उस समय उसने अपना रूप धारण ऋद्धि से सुशोभित, शरीर की

कांति से अत्यन्त दैदीप्यमान और कामदेव को जीतने वाला अत्यन्त सुन्दर बनाया। इस प्रकार का भेष बनाकर वह पृथ्वी पर उतरा और सगर के ही चैत्यालय में आया।।62-63।।

उसी समय वह चक्रवर्ती राजा सगर भी अपने चैत्यालय में भगवान की पूजा करने के लिए आया और उन चारणऋद्धि को धारण करने वाले मुनिराज को देखकर प्रसन्न हुआ तथा आश्चर्य भी करने लगा।।64।।

जिस समय मुनिराज का भेष धारण किये वह देव भगवान की वंदना कर रहा था उसी समय शुद्ध सम्यग्दृष्टि सगर ने उससे पूछा-''हे स्वामिन्! आपने जो यह नवीन अवस्था में ही तपश्चरण धारण कर लिया है इसका क्या कारण है?''।।65।।

राजा की यह बात सुनकर वह देव कहने लगा- हे राजन! मेरी एक सुन्दर बात सुनिए। ''यह यौवन अवस्था बुढ़ापे नष्ट हो जायेगी, यह आयु क्षण-क्षण में नष्ट होती जा रही है। इस संसार का स्वरूप कुछ तो मुझे मालूम है और कुछ मालूम नहीं है परन्तु मेरा मरना निश्चित है इसमें सन्देह नहीं और वह मृत्यु कब होगी सो भी मालूम नहीं इसीलिए मैंने यह तपश्चरण धारण कर लिया है''।।66-67।।

यह शरीर अपवित्र है, पाप रूप है, दुर्गन्ध मय है और दुःखों का पात्र है तथा इसीलिए यह त्याग करने योग्य है। और ये भोग किंपाक फल के समान अंत में महा दुःख देने वाले हैं।।68।।

इस संसार में सदा अनिष्ट पदार्थों का संयोग और इष्ट पदार्थों का वियोग लगा ही रहता है। इसी प्रकार चारों गतियों में परिभ्रमण करते हुए इस जीव के अनन्त भावों का चक्र तो घूम चुका है और फिर भी अनन्तानन्त भव बाकी हैं।।69।।

इसलिए जिस प्रकार सुवर्ण पाषाण (खान में से निकला हुआ सोना मिला पत्थर) अग्नि से तपाते-तपाते शुद्ध बन जाता है उसी प्रकार मैं भी, तपश्चरण

रूपी अग्नि से कर्मरूपी शत्रुओं को समूल नाश कर सदा रहने वाली आत्मा की शुद्धता को धारण करूँगा''।।70।।

मणिकेतु के इस प्रकार कहने पर राजा सगर संसार के भय से भयभीत हो गया तथापि भोगों में अत्यन्त लालसा करने वाला वह सगर मोक्षमार्ग की ओर नहीं झुका।।71।।

यह देखकर मणिकेतु ने समझ लिया कि अभी इसका संसार बहुत बाकी है यही समझकर और खेद खिन्न होता हुआ वह देव अपने स्थान को चला गया। सो ठीक ही है क्योंकि किसी उपाय के निष्फल हो जाने पर भी बुद्धिमान लोग खेद-खिन्न नहीं होते हैं।।72।।

अथानन्तर-किसी एक समय समस्त उपद्रवों से रहित अपने साम्राज्य का उपभोग करता हुआ वह राजा सगर अपनी सभा में बैठा था उसी समय उसके सब पुत्र मिलकर उसके पास आए।।73।।

वे सब राजा राजपुत्र सिंह के बच्चों के समान उद्धत थे और ऐसे मालूम पड़ते थे मानो मूर्ति को धारण करने वाले नये ही हों। उन सबने आकर मस्तक झुकाकर दण्डवत् की और फिर वे इस प्रकार निवेदन करने लगे।।74।।

महाराज्! हम लोगों को आप अपनी इच्छानुसार कोई ऐसी आज्ञा दीजिए जो बड़े साहस के साथ करने योग्य हो, और बड़ी भारी महिमा को उत्पन्न करने वाली हो।।75।।

पिता को उचित है कि छोटी आयु के पुत्रों को पालन करें और जब वे युवावस्था को प्राप्त हो जायें तब उन्हें अपनी आज्ञानुसार किसी काम पर भेजे। यह सब जगह का स्वयं सिद्ध न्याय है और विद्वान लोग भी इसको मानते हैं इसलिए आप कृपाकर हमारे लिए कोई कार्य बतलाइये।।76-77।।

जो पुत्र जन्म लेकर केवल पिता का धन नाश करते हैं वे खेतों की रक्षा के लिए बनाये हुए फूंस के मनुष्य से भी (खेतों की रक्षा के लिए जो खेतों में लकड़ी गाढ़कर कपड़े पहनाकर मनुष्य सा बना देते हैं) नीच समझे जाते हैं।।78।।

इस संसार में मनुष्य जन्म लेकर ऐसे मनुष्य के जीवित रहने से भी क्या लाभ है जो अपनी सामर्थ्य से सदा स्थिर रहने वाले और कीर्ति को बढ़ाने वाले किसी कार्य को न करें।।79।।

इस प्रकार उन पुत्रों के वचन सुनकर और अपने हृदय में समझकर सगर ने उन पुत्रों से कहा कि मैंने भरतक्षेत्र के छहों खण्ड सिद्ध कर लिए हैं, इसलिये अब मेरे पास कोई ऐसा कार्य नहीं है जो तुम्हें करने के लिए बतलाऊँ।।80।।

जिस प्रकार प्रमाण के द्वारा सब पदार्थ सिद्ध हो जाते हैं उसी प्रकार एक और चक्ररत्न से मैंने यह लवण समुद्र पर्यन्त समस्त पृथ्वी सिद्ध कर ली है अपने वश कर ली है।।81।।

अब तुम्हारे लिए सबसे बड़ा कार्य यही है कि तुम सब लोग मेरी आज्ञा को मानते हुए इस राज्यलक्ष्मी का अनुभव करो।।82।।

इस प्रकार चक्रवर्ती के निवारण करने पर वे सब राजपुत्र चुपचाप अपने-अपने स्थान को चले गये, सो ठीक ही है, क्योंकि पिता की आज्ञा सदा मानने योग्य होती है।।83।।

इस घटना के कुछ समय बीत जाने पर वे सब राजपुत्र आपस में सलाह कर महाराज सगर के समीप आए और हठ-पूर्वक प्रार्थना करने लगे कि- हे देव! जो किसी दूसरे साधारण मनुष्य से न हो सके ऐसे किसी कठिन कार्य के करने की जब आप आज्ञा देंगे तभी हम सब लोग भोजन आदि कार्य करेंगे। यदि आप किसी काम के करने की आज्ञा न देंगे तो फिर हम भोजन आदि कोई कार्य नहीं करेंगे। भले ही आप ही विचार कीजिए कि गन्ध रहित फूलों के समान यदि अनुपयोगी बहुत से ही पुत्र हुए तो भी उनसे क्या लाभ हैं।।84-86।।

उनके इस प्रकार के आग्रह को देखकर वह बुद्धिमान सगर बड़े संभ्रम के साथ विचार करने लगा कि इनको कौन-सा कार्य देना चाहिए? मेरे यहाँ करने योग्य कौन-सा कार्य बाकी है।।87।

विचार करते-करते उसे स्मरण हुआ कि, ''हाँ, मेरे यहाँ धर्म कार्य करना

बाकी है, धर्म कार्य के सिवाय और कोई कार्य बाकी नहीं है'' सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषों की बुद्धि उत्तम ही होती है?।।88।।

उस विचारशील और चतुर चक्रवर्ती ने यही निश्चय कर उन पुत्रों से कहा- हे उत्तम पुत्रों! सुनो, तुम्हारे लिए एक यश बढ़ाने वाला धर्म कार्य करने योग्य है उसे करो।।89।।

जिनमें रत्नों के प्रतिबिम्ब विराजमान हैं और जो सुवर्ण रत्नों के बने हुए अत्यन्त मनोहर हैं ऐसे चौबीस तीर्थंकरों के जिन मन्दिर भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर बनवाए थे।।90।।

उन्हें कलिकाल में उत्पन्न होने वाले महालोभी दुष्ट मनुष्य नष्ट कर देंगे। क्योंकि उस समय उनके पास पीतल भी नहीं टिक सकेगी फिर भला रत्न तो उनके पास किस प्रकार टिक सकेंगे?।।91।।

हे पुत्रों! तुम बड़े बलवान हो और बड़े पराक्रमी हो इसलिए तुम लोग जाओ और मेरी आज्ञा से कैलाश पर्वत के चारों ओर गंगा नदी को लाकर बहा दो।।92।।

अपने पिता की इस प्रकार आज्ञा पाकर अपने आत्मा को कृत-कृत्य मानते हुए वे सब राजपुत्र हाथ में दंड रत्न लेकर सगर के गुणों के ही समान प्रसन्न होते हुए चले।।93।।

इन राजपुत्रों ने अपने पराक्रम से और दंड रत्न से आधे ही क्षण में गंगा का जल लाकर कैलाश के चारों ओर खाई रूप से बहा दिया सो ठीक ही है क्योंकि समर्थ पुरुष क्या-क्या नहीं कर डालते हैं? सब कुछ कर डालते हैं।।94-95।।

इसी समय स्नेह और सज्जनता के द्वारा प्रेरणा किया हुआ वह मणिकेतु देव अपने अवधिज्ञान से खाई खोदने आदि के सब समाचार जानकर राजा सगर को तपश्चरण, धारण कराने के लिए अच्युत स्वर्ग से फिर आया। सो ठीक ही है क्योंकि विद्वान लोग एक बार अपना उद्यम निष्फल हो जाने पर भी अपना उद्यम नहीं छोड़ते हैं।।96।।

''जो अहित करने वाला हित भी हो तो भी उसे छोड़ देना चाहिए परन्तु जो हित करने वाला अहित हो उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिए।'' इसी प्रकार के एक कार्य को समझ कर वह मणिकेतु जिसकी खाई बनाई जा चुकी है ऐसे कैलाश पर्वत पर आया।।97।।

उसने अपना रूप भंयकर सर्प का बना लिया और सब राजपुत्रों को भस्म कर दिया। (मूर्छित कर मरे हुओं के समान कर दिया) सो ठीक ही है क्योंकि विद्वान लोग अपने मित्रों का हित करने के लिए कोई-कोई बुरा लगने वाला कार्य भी कर डालते हैं।।98।।

तलाश करने से राजपुत्रों के मारे जाने के सब समाचार मंत्रियों को मालूम हो गये थे परन्तु वे महाराज सगर को सुना नहीं सके थे और चुपचाप होकर बैठ गये थे।।99।।

उस समय वह मणिकेतु देव ब्राह्मण का रूप धारण कर राजा सगर को राजपुत्रों के मारे जाने के समाचार बतलाने के लिए आया। उस समय उसने जो ब्राह्मण का भेष बनाय था वह बुढ़ापे से जर्जर हो रहा था, अत्यन्त शोक से व्याकुल हो रहा था, नेत्र सब बैठ गये थे, पैर कम्पते थे और दांतों तले उंगली दबा रखी थी, ऐसे ब्राह्मण का रूप धारण कर वह देव सगर के समीप आया और इस प्रकार प्रार्थना रूप वचन कहने लगता है।।100-101।।

''हे देवों के देव! आप इस समस्त पृथ्वी की रक्षा कर रहे हैं तथापि मेरे एक ही प्यारे और योग्य पुत्र को यमराज ने हरण कर लिया है अर्थात् आपके रक्षा करते हुए भी यम ने मेरे पुत्र को मार डाला है।''।।102।।

इस प्रकार अप्रामाणिक (प्रमाण रहित) वचनों को सुनकर सगर हँसा और कहने लगा- ''विद्वान लोग वेदना के जानने वाले ब्राह्मणों को पशु बतलाते हैं सो ठीक है। अरे मूर्ख! महावृद्ध! तू मेरी बात सुन। इस यमराज को सिद्ध भगवान ही निवारण कर सकते हैं उनके सिवाय अन्य कोई भी इस यमराज को निवारण नहीं कर सकता। यहाँ तक की तीर्थंकर भगवान भी इसको निवारण नहीं कर सकते।

इस संसार में कितने ही जीव ऐसे हैं जिनकी आयु बीच में भी पूरी होकर नष्ट हो सकती है, तथा कितने ही ऐसे प्राणी हैं जिनकी आयु बीच में नष्ट नहीं होती। जो आयु पूर्ण होने पर ही मरते हैं उन सबको यह यमराज मार डालता है। यह यमराज मृत्यु के भी अगोचर है अर्थात् यमराज की कभी मृत्यु नहीं होती। हे ब्राह्मण! यदि तेरे हृदय में उस यमराज को भी मार डालने की इच्छा है तो तू अब घर में मत रह और इस शोक को छोड़कर शीघ्र ही मोक्ष दीक्षा (निर्वाण दीक्षा) धारण करे।'' इस प्रकार सगर की बात सुनकर वह ब्राह्मण कहने लगा- ''यमराज से बढ़कर और कोई बलवान नहीं है। यदि यह बात सत्य है और तू एक मेरे पुत्र के मर जाने पर मुझसे दीक्षा धारण कराता है तो तेरे सब पुत्र भी सर्प के काटने से मर गये हैं फिर तू उसे निर्वाण दीक्षा को धारण क्यों नहीं करता है? हे राजन! इस संसार में तेरे समान हित के वचन कहने वाला बहुत से दिखाई पड़ते हैं, परन्तु वे सब दूसरों को उपदेश देने में ही निपुण होते हैं, वे अपने आत्मा का कल्याण कुछ नहीं करते?'' ।।106-109।।

ब्राह्मण के इस प्रकार वज्र के समान वचन सुनकर चक्रवर्ती सगर का हृदय फट गया और वह मरे हुए निश्चेष्ट हाथी के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा।।110।।

चन्दन और उशीर मिले हुए शीतल जल से, पंखों की वायु तथा और भी शीतल उपचारों से वह होश में आया।।111।।

सावधान होते ही वह चिंतवन करने लगा कि ''यह लक्ष्मी मायाचार करने वाली है, इसके लिए व्यर्थ परिश्रम कभी नहीं करना चाहिए। यह शरीर भयानक है, अपवित्र है और नाश होने वाला है तथा प्रेम का समागम क्षणस्थायी है।'' इस प्रकार वैराग्य धारण कर वह चिंतवन करने लगा।।112।।

तदनंतर उस सगर चक्रवर्ती ने भागीरथ पुत्र को राज्य दिया और दृढ़धर्म नाम के आचार्य के समीप जाकर जिन दीक्षा धारण कर ली।।113।।

माया से ब्राह्मण का भेष धारण किये हुए वह मणिकेतु देव भी अपने कार्य

को सिद्धकर कैलाश पर्वत पर गया और माया से मूर्च्छित हुए उन राजपुत्रों को जीवित कर उनसे कहने लगा कि मैं तुम्हारे कुल का पुरोहित हूँ, इस समय तुम सबकों ढूँढ़ने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।।114-115।।

उस समय वे राजपुत्र ऐसे हो रहे थे मानो सोते से उठे हों उन्होंने उस ब्राह्मण से पूछा कि तू शोक क्यों कर रहा है, इसके उत्तर में उस ब्राह्मण ने कहा कि यह बात आपके सामने कहने योग्य नहीं है।।116।।

यह सुनकर राजपुत्रों ने हठ किया तब उस ब्राह्मण ने कहा- आप लोगों के मरने की बात सुनकर सगर को बहुत ही शोक था और इसलिए उन्होंने भागीरथ को राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली है।।117।।

उनके दीक्षा धारण करने से भी बहुत शोक हुआ है और यही समाचार सुनाने के लिए मैं आपके पास आया हूँ। इस प्रकार कहकर उस देव ने उन राजपुत्रों को भी समझाया। सो ठीक ही है क्योंकि मित्रों के द्वारा किया हुआ मायाचार भी हित करने वाला ही होता है।।118।।

शुद्ध बुद्धि को धारण करने वाले वे राजपुत्र भी उस ब्राह्मण की बात को सुनकर विरक्त हो गये और आचार्य श्री दृढ़धर्म के समीप जाकर उन्होंने भी उत्तम संयम धारण कर लिया।।119।।

उन सबके दीक्षा लेने के समाचार राजा भागीरथ ने भी सुने-वह उसी समय वहाँ पहुँचा और चरम शरीर को धारण करने वाले उन सब मुनिराजों को उसने बड़ी भक्ति से नमस्कार किया।।120।।

तथा भगवान जिनेन्द्रदेव के कहे हुए दयामयी धर्म का स्वरूप सुना और फिर वह श्रावक के उत्तम व्रत धारण कर अपने नगर को आया।।121।।

तदनंतर उस देव ने अपनी माया हटा दी और अपने मणिकेतु का रूप धारण कर उन मुनिराजों से प्रार्थना की- हे मुनिराज! आप मेरा अपराध क्षमा करें। इसके उत्तर में उन्होंने कहा- ''हे मित्र! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, तुमने तो हमारा उपकार ही किया है।'' इस प्रकार प्रसन्न वचन कहकर उस देव का हृदय शांत

किया। तथा अपना कार्य पूरा जो जाने पर सन्तुष्ट होकर वह देव अपने स्वर्ग को चला गया सो ठीक ही है क्योंकि दूसरों का उपकार करने से प्रायः महापुरुषों को सन्तोष ही होता है।।122-124।।

सगर आदि उन सब मुनियों ने शुद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र धारण कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्त में वे सब मोक्ष पधारे।।125।।

ये सब मुनि सम्मेदशिखर पर्वत से मोक्ष पधारे थे। इस बात को सुनते ही राजा भागीरथ को वैराग्य प्राप्त हुआ था और उसके भाव बहुत ही उत्तम हो गये थे।।126।।

उसने अपने वरदत्त नाम के पुत्र को राज्य दिया और कैलाश पर्वत पर जाकर शिवगुप्त नाम के आचार्य के समीप जाकर सर्वोत्तम संयम धारण किया।।127।।

किसी एक दिन समस्त इन्द्रियों को जीतने वाले और उत्तम चारित्र को धारण करने वाले वे भागीरथ मुनिराज समस्त अंतरंग परिग्रहों को त्याग कर और प्रतिमायोग धारण कर गंगा नदी के किनारे विराजमान थे उस समय किसी ने उनका अभिषेक किया था, उस अभिषेक के जल का प्रवाह गंगा नदी में आ मिला तभी से यह गंगा नदी संसार में तीर्थरूप से मानी गयी है। सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषों के आश्रय से क्या क्या नहीं होता है? सब कुछ होता है।।128-129।।

मुनिराज भागीरथ ने भी शुक्लध्यान से समस्त कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्त में वे जिसका महोदय अव्याबाध है कभी नष्ट नहीं होता ऐसी मोक्षरूपी परम लक्ष्मी को प्राप्त हुए।।130।।

इस प्रकार पुरोहित की कही हुई सब कथा सुनकर वह सुभौम चक्रवर्ती बहुत ही सन्तुष्ट हुआ, उसे बहुत ही आनन्द हुआ और योग्य वचनों के द्वारा उस पुराहित को प्रसन्न किया।।131।।

तदनन्तर उस सुभौम चक्रवर्ती ने अनेक प्रकार से पूजा की और फिर अजेय पराक्रम को धारण करने वाला और छह प्रकार की सेना से सुशोभित वह चक्रवर्ती वहाँ से चला।।132।।

जिस प्रकार गंगा नदी के साथ-साथ (समुद्र के गिरने के समीप) समुद्र की लहरें चलती हैं उस प्रकार गंगा नदी के किनारे-किनारे उसकी सेना फैलकर चलने लगी।।133।।

उसने भरत खण्ड के छहों खण्डों में अपनी आज्ञा ग्रहण कराई। वहाँ के राजाओं से सारभूत पदार्थ ग्रहण किये और फिर वह अयोध्या नगर में आ पहुँचा।।134।।

चन्द्रमा के समान निर्मल कीर्ति से जिसने सब दिशाएँ भर दी हैं और चंचल नेत्रों को धारण करने वाली स्त्रियाँ जिसे अपने नेत्रों से देख रही हैं ऐसे उस चक्रवर्ती ने जिसमें अनेक प्रकार की ध्वजाएँ फहरा रही है और अनेक प्रकार से जिसकी शोभा बनाई गई है ऐसे उस अयोध्या नगर में बड़ी विभूति के साथ प्रवेश किया।।135।।

इस प्रकार आचार्य श्री सकलचंद्र के आज्ञाकारी भट्टारक श्री रत्नचन्द्र विरचित विद्वर श्री तेजपाल की सहायता से निर्मापित तथा खण्डेलवाल जाति के पाटणी गोत्ररूपी आकाश के सूर्य ऐसे सेठ श्री हेमराज नाम के चिन्ह से सुशोभित ऐसे इस सुभौम चारित्र में चक्रवर्ती के दिग्विजय को वर्णन करने वाला यह पाँचवा सर्ग समाप्त हुआ।

छठा सर्ग

चक्रवर्ती के समुद्र में जाने की इच्छा का और मंत्रियों द्वारा हितोपदेश का वर्णन

अथानन्तर- वह चक्रवर्ती राजा सुभौम देवों की विभूति के समान महाविभूति वाले उत्तम राज्य का उपभोग करने लगा।।1।।

रत्न निधियाँ, रानियाँ, नगर, शय्या, आसन, सेना, नाटकघर, सभासद, भोजन की सामग्री और सवारी आदि सब उत्तम पदार्थ उसे प्राप्त थे।।2।।

बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उसकी सेवा करते थे और दण्ड के समान नमस्कार करते हुए अनेक योद्धा उसके चरण कमलों की सेवा करते थे।।3।।

उस चक्रवर्ती के रूप लावण्य सौभाग्य और पतिव्रत आदि गुणों से सुशोभित होने वाली छियानवें हजार रानियाँ थी।।4।।

इसी प्रकार उस पुण्यवान के भद्र जाति के मदोन्मत्त चौरासी लाख हाथी थे।।5।।

सब ऋतुओं में सुख देने वाले, उत्तम सुवर्ण के बने हुए और बहुत ऊँचे ऐसे चौरासी लाख ही रथ थे।।6।।

तोते के पंखों के समान जिनके वर्ण हों जो पृथ्वी और आकाश दोनों जगह अच्छी तरह चल सकते हैं और वायु के समान जो तेज चलने वाले हैं ऐसे अट्ठारह करोड़ घोड़े उस चक्रवर्ती के बंधे हुए थे।।7।।

अनेक देव जिनकी रक्षा कर रहे हैं ऐसे चौदह रत्न थे और वह चक्रवर्ती नौ निधियों का स्वामी था।।8।।

समस्त शत्रुओं को जीतने वाले उस चक्रवर्ती के अनेक प्रकार की ऋद्धियों से सुशोभित और समस्त पदार्थों को देने वाले बत्तीस हजार देश थे।।9।।

युद्ध में अत्यंत शूरवीर और अत्यन्त प्रतापी ऐसे चौरासी करोड़ पैदल चलने वाले सिपाही उस चक्रवर्ती की सेना में थे।।10।।

उस चक्रवर्ती के धन धान्य से परिपूर्ण और गोधन (गाय, भैंस आदि) से भरे हुए छियानवें करोड़ गाँव थे।।11।।

तथा सोलह हजार गणबद्ध जाति के व्यन्तर देव रात दिन उसकी सेवा करते रहते थे।।12।।

वह चक्रवर्ती अपने तेजस्वी प्रताप से तपते हुए सूर्य को भी नीचा दिखाता था और जिसमें दैदीप्यमान मणियों की किरणें छूट रही हैं। ऐसे विचित्र (अत्यन्त शोभायमान) सिंहासन पर विराजमान था।।13।।

क्षीरसागर की लहरों के समान सफेद छत्र उस पर ढोले जा रहे थे और चन्द्रमा की किरणों के समान सफेद और दैदीप्यमान छत्र से वह सूर्य को भी आच्छादित कर रहा था।।14।।

वह चक्रवर्ती दुष्ट पुरुषों को दण्ड देने में और शिष्ट पुरुषों को पालन करने में अत्यन्त चतुर था और तीनों प्रकार की शक्ति को धारण करने वाला वह चक्रवर्ती सप्त अंगों से परिपूर्ण ऐसे छहों खण्डों के राज्य का अनुभव कर रहा था।।15।।

जिस प्रकार इन्द्र अपनी अनेक देवांगनाओं के साथ अनेक प्रकार के भोगोपभोग सेवन करता है उसी प्रकार वह बुद्धिमान चक्रवर्ती, चक्रवर्ती की विभूति पाकर चिरकाल तक दस प्रकार के भोगों का अनुभव कर रहा था।।16।।

अथानन्तर- उस सुभौम चक्रवर्ती के एक अमृत रसायन नाम का रसोईया था, वह रसोईया पाक शास्त्र के अनुसार बहुत ही उत्तम भोजन बनाता था और भोजन बनाने में बहुत चतुर था।।17।।

उसके बनाये हुए मीठे और स्वादिष्ट भोजनों से वह चक्रवर्ती रसना इंद्रिय का बहुत ही लोलुपी हो गया था। और उसने संतुष्ट होकर उसको सौ गाँव दे दिये थे।।18।।

इस प्रकार बहुत सा समय बीत गया। किसी एक दिन उस रसोईया ने हर्ष से

जिह्वा इन्द्रिय के वशीभूत होने वाले उस चक्रवर्ती को अनेक प्रकार के मसाले मिलाकर इमली खाने को दी।।19।।

उस इमली में बड़ी तेज खटाई थी इसलिए उसके खाने से चक्रवर्ती की जीभ लकड़ा गई, कड़ी हो। तब चक्रवर्ती ने भौंहें चढ़ाकर क्रोधित होकर पूछा कि तुमने यह कौन सा रस बनाया है?।।20।।

रसोईया ने कहा कि-''यह इमली के प्रसिद्ध वृक्ष से उत्पन्न होने वाली इमली है'' इस बिना जाने हुए अपूर्व नाम को सुनकर राजा उस रसोईया पर बहुत ही क्रोधित हुआ।।21।।

कुछ पिछले जन्म की शत्रुता का संस्कार था इसलिए राजा ने उसके गुणों को भी अच्छी तरह से नहीं पहचाना और उसे दण्ड दे डाला। सो ठीक ही है क्योंकि राजा किसी का भी मित्र नहीं होता।।22।।

राजा ने रसोईया का सब कुछ छीन लिया, उसका मस्तक मुड़ा दिया और गधे पर चढ़ाकर जबर्दस्ती गाँव से बाहर निकाल दिया।।23।।

वह रसोईया उस दंड से व्याकुल हो गया, शोक रूपी ठूंठ से उसका हृदय फट गया और विपरीत बुद्धि को धारण करने वाले उस रसोईया ने तपसियों के आश्रम में जाकर मिथ्या तपश्चरण धारण कर लिया।।24।।

उस मूर्ख ने पंचाग्नि तपश्चरण से शरीर को कृश किया और मरने के समय तीव्र क्रोध के कारण अत्यन्त निंदनीय निदान किया।।25।।

उसने निदान किया कि ''यदि दूसरे जन्म में इस तपश्चरण को कोई लाभ होता हो तो मुझमें अत्यन्त शक्ति हो जिससे कि मैं इस सुभौम चक्रवर्ती को मार सकूँ।।26।।''

उस निदान के तीव्र दोष से तथा बचे हुए कुछ पुण्य कर्म के उदय से वह रसोईया मरकर 'ज्योतिः प्रभ' नाम का ज्योतिषी देव हुआ।।27।।

मिथ्या अवधिज्ञान से उसने पहले जन्म की सब अवस्था जान ली तथा पहले जन्म के बैर का स्मरण कर क्रोध से राजा सुभौम को मारने की इच्छा की।।28।।

वह देव विचार करने लगा कि तपश्चरण के बल से मुझमें बड़ी भारी सामर्थ्य उत्पन्न हुई है। यदि मैं इस समय भी अपने शत्रु को न मारूँ, तो जिस प्रकार कंजूस का धन व्यर्थ ही पड़ा रहता है। उसी प्रकार मेरी सामर्थ्य भी व्यर्थ ही समझनी चाहिए।।29।।

इसलिए अब मैं महापापी दुष्ट, कृतघ्नी और जिह्वा इन्द्रिय का लोलुपी ऐसे इस सुभौम को अवश्य ही मारूँगा। इस प्रकार वह विचार करने लगा।।30।।

विचार करते-करते उसके हृदय में फिर एक चिंता उत्पन्न होने लगी। वह सोचने लगा कि वह राजा सुभौम चक्रवर्ती है, महा शक्तिशाली है और देव विद्याधर आदि सबका स्वामी है वह कैसे मारा जा सकता है? हाय! हाय! यह मेरी देव पर्याय भी सब व्यर्थ ही गई।।31।।

वह राजा सुभौम अजेय है, किसी से भी नहीं जीता जा सकता तथा मैं अत्यन्त क्षुद्र हूँ। मैं उसे किस प्रकार जीत सकता हूँ। इस प्रकार चिंतवन करते-करते उसकी दुष्ट बुद्धि मारने का एक नया उपाय सोचने लगी।।32।।

उसने विचार किया कि जो जीव इन्द्रिय का लोलुपी है उसी इन्द्रिय के द्वारा विद्वान लोगों को उसे पकड़ना चाहिए। हाथी स्पर्शनेन्द्रिय के वशीभूत है इसलिए वह उसी इन्द्रिय के द्वारा पकड़ा जाता है।।33।।

सब इन्द्रियों में जिह्वा इन्द्रिय प्रधान मानी गई है। जो मनुष्य उसी जिह्वा इन्द्रिय के वश है उसको मारना इस संसार में क्या कठिन है?।।34।।

जिस मनुष्य की जीभ खाने में, बोलने में कुछ भी प्रमाण नहीं जानती, कुछ परिमाण व मर्यादा नहीं रखती, उसको इस लोक में परलोक दोनों लोकों में पेंड़ पेंड़ पर आपत्तियाँ आती रहती हैं।।35।।

वह भी जिह्वा इन्द्रिय का लोलुपी है इसलिए मैं उसे सहज ही लीलापूर्वक मार सकूँगा। यही समझकर और वैश्य का भेष धारण कर वह देव आया।।36।।

उस मायामयी देव ने अपने साथ बहुत से बैल लिए और उन पर समुद्र के मध्य भाग में बसने वाले द्वीपों में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के पदार्थ लाद-लाद कर अयोध्या नगर में आया।।37।।

उस दुष्ट देव ने राजा के सामने अनेक रत्नों के साथ-साथ बहुत स्वादिष्ट पके हुए और प्राणों से भी प्यारे ऐसे फल लाकर भेंट में रखें।।38।।

जो पहले कभी नहीं देखे थे ऐसे उन फलों को देखकर चक्रवर्ती ने आश्चर्य में आकर उस वैश्य से पूछा कि उन फलों को तुम कहाँ से लाये हो?।।39।।

इसके उत्तर में वैश्य ने (मायामयी देव ने) कहा कि ये फल आते हुए मुझे एक देवताओं के वन से प्राप्त हुए हैं, ये फल भोगने वाले पुरुष के पुण्य से ही उत्पन्न हुए हैं। और आप पुण्यवान हैं इसलिए ये फल आपके ही योग्य हैं।।40।।

इस संसार में जो उत्तम पदार्थ हैं वे सब राजाओं के ही योग्य होते हैं यही समझकर मैंने ये फल लाकर आपके सामने भेंट किये हैं।।41।।

उस देव के द्वारा लाये हुए स्वादिष्ट फलों को खाकर वह चक्रवर्ती बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और उस वैश्य के योग्य दान सम्मान आदि देकर उस मायामयी देव का बहुत ही आदर सत्कार किया।।42।।

वह मायाचारी देव उस राजा को मारने की इच्छा से माया से बने हुए और अत्यन्त स्वादिष्ट ऐसे फलों को भेंट देकर प्रतिदिन राजा की सेवा करने लगा।।43।।

कुछ दिन बीत जाने पर किसी एक दिन वह मामामयी देव खाली हाथ आकर सभा में बैठ गया और चक्रवर्ती से कहने लगा- महाराज! अब वे फल निबट गये।।44।।

उन फलों में लोलुपी हुआ वह चक्रवर्ती इस बात को सुनकर उस वैश्य से आदर के साथ कहने लगा- हे आर्य! वे फल मुझे बहुत ही अच्छे लगते हैं इसलिए तुम जाकर उनको लाओ।।45।।

चक्रवर्ती की यह बात सुनकर और अपनी शक्ति का विचार कर उस देव ने छहों खण्ड के स्वामी उस सुभौम चक्रवर्ती से कहा- अब मैं उन फलों को नहीं ला सकता।।46।।

हे स्वामिन्! मैं जो इतने फल लाया था वे भी बड़ी कठिनता से लाया था। मैंने एक देव की आराधना की थी उसी ने ये फल दिये थे क्योंकि जो देव वश हो जाता है वह क्या नहीं दे सकता? अर्थात् सब कुछ दे सकता है।।47।।

हे स्वामिन्! अमृत फलों के समान उन फलों को खाने की यदि आपकी इच्छा है तो आप मेरे साथ उस देवों के वन में चलें। वहाँ जाकर आप अपनी इच्छानुसार चाहे जितने फल खाना।।48।।

छहों खण्ड के देव तो सब आपके वश हैं और सब सेवक के समान रहते हैं फिर भला आपके लिए कौन सा पदार्थ दुर्लभ है?।।49।।

वहाँ के रहने वाले देवताओं के कन्धे पर बहुत से फल लादकर आप अपनी सेवा कराने के लिए उनको बेंगीवालों के समान ले आना।।50।।

इस प्रकार उस देव के मायामयी वचनों को सुनकर वह चक्रवर्ती राजा चलने के लिए तैयार हो गया। सो ठीक ही है क्योंकि मूर्ख लोग धूर्तों के द्वारा किये हुए कार्यों को कभी नहीं समझ सकते हैं।।51।।

उस चक्रवर्ती ने अपने मन में विचार किया कि ''मेरे खाने योग्य उत्तम पदार्थों से भरे हुए उस वन को देवताओं ने अब तक छिपाकर रखा है इसलिए अब उन्हें दण्ड देना चाहिए'' यही विचार कर वह मूर्ख राजा अकेला ही उस वैश्य के साथ जाने के लिए तैयारी करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि भाग्य के प्रतिकूल हो जाने पर मनुष्य की बुद्धि भी मारी जाती है।।52-53।।

यह देखकर मन्त्री आदि सब लोग मिलकर राजा के समीप आये और हाथ जोड़कर तथा नमस्कार कर राजा से कहने लगे।।54।।

''हे प्रभो! बिना किसी कारण के आप कहाँ जाना चाहते हैं? क्योंकि जीवों की प्रवृत्ति बिना किसी कारण के कहीं भी नहीं देखी जाती।।55।।''

आप सबसे बढ़कर बलवान हैं और सबसे बढ़कर लक्ष्मीवान हैं फिर आपके लिये कोई ऐसा असाध्य कार्य नहीं है जो बाकी बचा हो, तथा यदि कोई ऐसा कार्य बाकी भी हो तो आप हमसे कहिये, हम लोग उसको बहुत शीघ्र कर डालेंगे।।56।।

यदि आपको यह भी स्वीकार न हो और आप जाना ही चाहें तो आप सेना के साथ जायें क्योंकि इस संसार में राजा और चन्द्रमा अकेले कभी शोभायमान नहीं होते।।57।।

मंत्रियों के इस प्रकार के वचन सुनकर चक्रवर्ती ने उन मंत्रियों से कहा-''मैं उन दिव्य फलों को जिन्हें अन्य कोई ला नहीं सकता उनको लेने के लिए समुद्र में जाता हूँ।।''।।58।।

चक्रवर्ती की यह बात सुनकर उसका हित करने वाले वे सब लोग कहने लगे-''इस समय आप आकाश के फूलों की सुगन्ध सूंघना चाहते हैं।।59।।

इन फलों की तो बात ही क्या है? इस समय आपके पास जो भोगोपभोग की सामग्री है वह इन्द्र के पास भी नहीं है। हाथ में आए हुए अमृत को छोड़कर भला कांजी को कौन पीता है?।।60।।

आप इस चक्रवर्ती के राज्य को छोड़कर समुद्र में जाना चाहते हैं परन्तु मूर्ख लोग ही चिंतामणि रत्न को छोड़कर काँच के टुकड़े को खरीदना चाहते हैं।।61।।

बिना जाने हुए अंजान फलों के खाने में महादोष है और उनके खाने से अष्ट मूलगुण नष्ट हो जाते हैं, क्या यह बात आपने जैन सिद्धान्त में नहीं सुनी है?।।62।।

कहाँ तो अंजान फलों के खाने की लोलुपता? और कहाँ यह वैश्य? हम लोग तो इन दोनों को असंभव ही समझते हैं और मृगतृष्णा के पीने के समान मानते हैं।।63।।

आप राजपुत्र हैं, योग्य हैं और अमृत के समान भोजन करने वाले हैं फिर भी आपकी बुद्धि फल खाने की इच्छा कर रही है? मालूम होता है यह बुद्धि अवश्य ही किसी होनहार अनिष्ट को करेगी।।64।।

इस संसार में पहले अनेक मनुष्यों ने अपनी लोलुपता के कारण गुड़ से मिले हुए तृण भी खा डाले हैं, परन्तु ऐसी लोलुपता व्यसनों की संगति के दोष से राज्य भंग का कारण मानी जाती है।।65।।

हे स्वामिन्! ''कोई देव मायामयी वैश्य का रूप धारण कर आठवें चक्रवर्ती को मारेगा।'' यह बात पहले के पुराणों में लिखी है। आप इस बात पर विश्वास करें।।66।।

हे राजन्! इस वैश्य का कुल किसी को मालूम नहीं है। इसने माया से वैश्य का रूप बना रखा है इसलिए आप इस पर विश्वास मत कीजिए क्योंकि इस पर विश्वास करना अनर्थ करने वाला है।।67।।

जो मनुष्य अपनी जाति के पक्ष को छोड़कर दूसरों के पक्ष में चले जाते हैं वे मनुष्य अन्त में मारे जाते हैं जैसे कि इसी देश में कुकर्दम मारा गया था।।68।।

'वह कुकर्दम किस प्रकार मारा गया था?' राजा ने इस प्रकार पूछने पर राजा का हित चाहने वाले वे मंत्री लोग कहने लगे-

हे राजन्! अज्ञानी लोगों को शिक्षा देने वाली उस कुकर्दम की कथा सुनिये।।69।।

इसी देश के किसी वन में एक शक्ति रहित श्रृंगाल रहता था, वह किसी एक समय नगर के समीप शमशान में मुर्दा खाने के लिए आया।।70।।

नगर के बाहर उसने एक नील का कुंड देखा। उसको उसने एक अपूर्व रस देखा और हृदय में प्रसन्न होकर उसको पीने के लिए उसमें घुस गया।।71।।

उस नील रंग से उसका सब शरीर भींग गया, उसका रंग बदल गया, उसका मुँह गला आदि सब नीले रंग का हो गया और उसकी आकृति भयानक हो गई। ऐसी आकृति को लिए हुए वह वहाँ से निकला।।72।।

भयानक आकृति को धारण करने वाले उस श्रृंगाल को देखकर सिंह, बाघ आदि भयंकर जन्तु भी डर गये और जो पहले कभी नहीं देखा था ऐसे आकार वाले उस श्रृंगाल को देखकर वे सब जानवर आश्चर्य करने लगे।।73।।

वे विचार करने लगे कि ''अत्यन्त बलवान और किसी से भी न जीता जा सके ऐसा यह कोई हमारा शत्रु उत्पन्न हुआ है। इस वन में रहने वाले हम लोगों ने इसको आज तक नहीं देखा था।''।।74।।

इस प्रकार डरकर कितने ही जानवर तो भागकर दूसरे वन में चले गये और कितने ही जानवर अपने जीवित रहने की इच्छा से पहाड़ों की गुफाओं का आश्रय लेकर जा पड़े।।75।।

उस रंगे हुए गीदड़ को देखकर और उसकी सामर्थ्य को न जानकर उन जानवरों में बड़ा भारी त्रास उत्पन्न हो गया और वे अपने स्त्री, बच्चों को छोड़कर भी भागने लगे।।76।।

किसी एक दिन बड़ी कठिनता से सिंह, बाघ आदि सब जानकर एकत्रित हुए और परस्पर विचार कर पूछने के लिए सब मिलकर उस रंगे हुए गीदड़ के पास पहुँचे।।77।।

ये सब जानकर विनयपूर्वक उससे पूछने लगे-हे-पूज्य! आपका क्या नाम है, क्या जाति है और कितना बल है और आप यहाँ कहाँ से पधारे हैं।।78।।

यद्यपि उस समय उसको जाति वालों ने अनेक प्रकार के वचन कहकय्कई बार समझाया था तथापि कपट का धारण करने वाले उस रंगे हुए गीदड़ ने अपना माहात्म्य प्रगट करने की इच्छा से उन लोगों से कहा-''कुकर्दम मेरा नाम है, करोड़ों सिंहों के बल से भी मुझमें अधिक बल है, मेरी शक्ति भी अपार है और मैं एक उत्तम जाति का जानवर हूँ। मैं देवारण्य नाम के वन से यहाँ आया हूँ। मैं वन के जीवों के स्वामियों का भी स्वामी हूँ और उन सब जीवों को अपनी आज्ञा ग्रहण कराने के लिए यहाँ आया हूँ।।79-81।।

उन सिंह बाघ आदि जानवरों की समझ में उस रंगे हुए गीदड़ की चाल समझ में नहीं आयी, वे सब उसके वचनों से ठगे गये और उसके भय से भयभीत होकर उस कुकर्दम की सेवा करने लगे।।82।।

उन सब जानवरों ने एक उत्तम आसन पर बिठाकर उस कुकर्दम को अपना राजा बनाया और उसकी आज्ञा को मस्तक पर रखकर तथा पंक्ति रूप से उसके चारों ओर बैठकर सेवा करने लगे।।83।।

इस प्रकार कितना ही समय व्यतीत हो गया। किसी एक दिन किसी सिंह ने अपने मन में विचार किया कि मेरी जाति के सिवाय अन्य कोई जानवर भी बलवान होता है यह बात न तो पहले कभी देखी और न सुनी। यह जानवर कौन-सा है इसकी परीक्षा करनी चाहिए। क्योंकि परीक्षा को विद्वान लोग भी सब मानते हैं।।84-85।।

अपने हृदय में यही विचार कर वह सिंह रात दिन उस गीदड़ की सेवा करने लगा और लोगों से कहने लगा कि मैं अब अपने स्वामी को कहीं नहीं जाने देना चाहता हूँ, मैं तो अब यहाँ ही पड़ा रहूँगा।।86।।

किसी एक दिन शाम के समय जाड़े से दुःखी हुए अन्य गीदड़ों की आवाज सुनकर रंगा हुआ गीदड़ भी स्वयं बोलने की इच्छा करने लगा। वह मूर्ख उस सिंह को सोया हुआ समझकर खूब जोर से चिल्लाने लगा सो ठीक ही है क्योंकि संसारी जीव अपनी जाति और कुल के धर्म कभी नहीं छोड़ सकते हैं।।87-88।।

उस समय वह सिंह वास्तव में नहीं सो रहा था किन्तु बनावटी नींद में पड़ा था, उसने उस गीदड़ की आवाज सुनकर ही उसको गीदड़ समझ लिया सो ठीक ही है क्योंकि दम्भ अथवा छल कपट कभी स्थिर नहीं रह सकता।।89।।

तदनंतर उस सिंह ने सब के राजा बने हुए उस कुकर्दम को धर पटका जिससे कि वह मर गया। हे राजन! आप उसके समान मूर्ख क्यों बनते हैं।।90।।

उन मंत्रियों ने इस प्रकार दृष्टांत देकर समझाया तथापि उस चक्रवर्ती ने एक न मानी। सो ठीक ही है क्योंकि जिसकी आने वाली आपत्तियाँ समीप ही होती हैं वे हित की बात कभी नहीं मानते हैं।।91।।

जिस समय होनहार दुःख अत्यन्त समीप आ जाता है तब बुद्धिमान मनुष्य भी मूर्ख हो जाता है। अर्थात् उस समय बुद्धिमान पुरुष की बुद्धि भी मारी जाती है जैसे इस संसार में समस्त उत्तम पदार्थों का विचार करने वाले आठवें चक्रवर्ती सुभौम की बुद्धि मारी गई थी।।92।।

यही समझकर भव्य जीवों को अपना पाप रूपी अन्धकार दूर करने के लिए भट्टारक रत्नचन्द्र विरचित और दस भेदों से सुशोभित ऐसा यह उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि धर्म सदा धारण करते रहना चाहिए।

इस प्रकार आचार्य श्री सकलचंद्र के आज्ञाकारी भट्टारक श्री रत्नचन्द्र विरचित विद्ववर श्री तेजपाल की सहायता से निर्मापित तथा खण्डेलवाल जाति के पाटणी गोत्ररूपी आकाश के सूर्य ऐसे सेठ श्री हेमराज नाम के चिन्ह से सुशोभित ऐसे इस सुभौम चारित्र में चक्रवर्ती के समुद्र में जाने की इच्छा का और मंत्रियों के द्वारा हितोपदेश सुनाने का वर्णन करने वाला यह छठवां सर्ग समाप्त हुआ।

सातवाँ सर्ग

सुभौम चक्रवर्ती के नरक में जाने का तथा होनहार तीर्थंकर का वर्णन

अथानन्तर- जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथी अपने खूंटे की सांकल को तोड़कर भाग जाता है उसी प्रकार उन मंत्रियों के वचनों की अवहेलना कर वह राजा सुभौम उस वैश्य के साथ चला गया।।1।।

जिस प्रकार जाल में फंसे हुए पक्षी उस जाल के साथ अपने आप चले आते हैं उसी प्रकार यह मनुष्य भी जिस किसी देश में उसको सुख अथवा दुःख होनहार होता है उसी देश में पहुँच जाता है।।2।।

जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती हैं और रुकने के लिए मंत्रियों ने जिसे बहुत समझाया है ऐसा वह सुभौम चक्रवर्ती छहों खण्ड व पृथ्वी का राज्य छोड़कर समुद्र में चला।।3।।

उस समय चक्रवर्ती का पुण्य नष्ट हो गया था इसलिए उस पुण्य से उत्पन्न होने वाली सामग्री भी सब नष्ट हो गई थी तथा निधि रत्न आदि सब उसके घर से नष्ट हो गये थे।।4।।

अनेक देव जिनकी रक्षा कर रहे थे ऐसे मणि मुक्ताफल आदि समस्त सारभूत पदार्थ उसके पाप कर्म के उदय से नष्ट हो गये थे।।5।।

रसना इन्द्रिय का लोलुपी और उस देव की मायाचारी से ठगा हुआ। वह मूर्ख सुभौम चक्रवर्ती अकेला ही जहाज में बैठकर समुद्र में चला।।6।।

यही समझकर वह वैश्य का रूप धारण किये हुए शत्रु देव अपने शत्रु सुभौम को समुद्र के बीच में ले गया और फिर उसने पहले जन्म का (अमृत रसायन नाम के रसोईया) का रूप धारण किया।

तदनन्तर वह देव उस राजा से दुर्वचन कहने लगा कि "हे महा दुष्ट! कृतघ्न! पाप कर्म करने वाले! तू मुझे अमृत रसायन नाम के रसोईया को समझा।।7-8।।

तूने पहले जन्म में बिना अपराध के ही दण्ड दिया था। अब मैं तीव्र पंचाग्नि तपकर ज्योतिषी जाति का देव हुआ हूँ।।9।।

पहले जन्म में की हुई शत्रुता के कारण मैं आज तुझे मारने के लिये यहाँ आया हूँ। इसलिए अब तू अपने आत्मा का हित करने के लिए अपने इष्ट देवता का स्मरण कर।।10।।

क्रोधरूपी अग्नि से जिसके नेत्र जल रहे हैं ऐसा वह देव क्रोध से इस प्रकार कहकर उस जहाज को उठाकर समुद्र के भीतर डुबो देने के लिए तैयार हुआ।।11।।

उसने अपनी माया से बड़ी वायु का वेग उठाया जिससे वह जहाज समुद्र के भीतर बडवानल अग्नि की ओर चलने लगा।।12।।

उस समय चक्रवर्ती उत्पन्न हुए कर्त्तव्य कर्म से व्याकुल हो गया तथा पहले जन्म के शत्रु के भय से डर गया और चिंता में तल्लीन होकर अपने हृदय में इस प्रकार चिंतवन करने लगा।।13।।

कि मंत्रियों ने जो बात कही थी वह सब मेरा हित करने वाली थीं, परन्तु मैंने उस पर कुछ विचार नहीं किया और न उनके कहे अनुसार कार्य किया। देवयोग से वह सब मेरे सामने आ गया।।14।।

चतुर पुरुषों को शीघ्रता के साथ कोई काम कभी नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह लक्ष्मी विचार करने वाले मनुष्य के पास ही जाती है और किसी को यह स्वीकार नहीं करती।।15।।

जो मनुष्य अपने मित्रों के हितोपदेशी वचन स्वीकार नहीं करते है वे मनुष्य अपने दुराग्रह से पेंड पर आपत्तियाँ भोगते हैं।।16।।

अथवा इस चिंता करने से मुझे क्या लाभ? साहस कर चक्ररत्न से इस शत्रु को मारकर शीघ्र ही समुद्र में डाल दूँ।।17।।

उस समय उसने चक्ररत्न को स्मरण किया परन्तु वह तो चला गया था

इसलिए वह उसके हाथ पर नहीं आया। सो ठीक ही है क्योंकि जिस प्रकार पुण्यहीन जीवों को मनुष्य जन्म की प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्लभ है उसी प्रकार ऐसे दुर्लभ पदार्थ भी पुण्य हीन मनुष्यों को प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है।।18।।

स्मरण करने पर भी चक्ररत्न के न आने पर उसने समझ लिया कि अब मेरा पुण्य नष्ट हो गया है इसलिए अब इसका कुछ और उपाय करना चाहिए इस प्रकार वह चिंतवन करने लगा।।19।।

"विद्वान लोग नमस्कार मंत्र को समस्त अनिष्टों के घात करने का कारण बतलाते हैं।" अपने हृदय में यही समझकर वह चक्रवर्ती नमस्कार मंत्र का स्मरण करने लगा। सो ठीक ही है क्योंकि संकट के प्राप्त होने पर यह नमस्कार मंत्र जीवों को संसार रूपी महासागर से पार कर देने वाला है।।20-21।।

उस नमस्कार मंत्र के स्मरण करने के प्रभाव से वह देव अनेक प्रकार के सैंकड़ों उपायों से भी उस चक्रवर्ती को उपसर्ग नहीं कर सका।।22।।

जब उस देव का सब उद्यम व्यर्थ हो गया तब वह पश्चाताप करने लगा और निराश हो गया। सो ठीक ही है क्योंकि इस संसार में जिनका उद्यम व्यर्थ हो जाता है उन्हें दुःख होता ही है।।23।।

यह विचार करने लगा कि यह मेरा शत्रु बड़ा ही बलवान है मैं इसे कभी नहीं मार सकता। यदि इस समय इसके साथ मैंने मित्रता धारण न की तो मैं दोनों ओर से भ्रष्ट हो जाऊँगा।।24।।

मैं इस शत्रुता से जीता हुआ बचकर अपने स्थान को किस प्रकार जाऊँगा? इस समय मेरी हालत पूँछ कटे हुए सर्प के समान हो गई है।।25।।

वह कथा इस प्रकार है कि कुरु देश के पलास नाम के गाँव में एक सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था। वह पुराणों की कथा कहने में बहुत ही चतुर था।।26।।

उसके सोमिला नाम की ब्राह्मणी थी जो बहुत ही सुख देने वाली थी। उनके देवदत्त नाम का पुत्र था जो पंडितों में मुख्य पंडित था।।27।।

वह सोमशर्मा ब्राह्मण खेती का काम भी करता था। किसी एक दिन वह अपने खेत की रखवाली के लिए गया और वहीं ठहर गया वहाँ पर उसने प्रसन्न होकर अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए जिसमें सब वर्ण और आश्रमों के आचरणों का वर्णन था ऐसे पुराण का अर्थ पंचम ध्वनि से (बड़े जोर से) पढ़ा।।28-29।।

उसी गाँव में एक धनदत्त नाम का धनी वैश्य रहता था वह बड़ा ही लोभी था और इसलिए आर्तध्यान से मर कर सर्प हुआ था तथा लोभ के कारण अपने एकत्रित किये हुए धन की रक्षा के लिए उस खेत के समीप ही एक बिल में रहता था।।30-31।।

उस ब्राह्मण के कंठ से निकले हुए मधुर शब्दों को सुनने से उस सर्प का समस्त शरीर आल्हादित व प्रसन्न हो गया और उस पुराण को सुनने से उसे जाति स्मरण हो गया।।32।।

पहले जन्म के स्मरण हो जाने से वह विचार करने लगा कि पहले मैंने मनुष्य जन्म पाया था, परन्तु मन, वचन, काय की शुद्धता पूर्वक व्रत दान आदि पुण्य कर्म कुछ भी नहीं किया था, इसलिए अब मर कर सर्प हुआ हूँ।।33।।

यह ब्राह्मण पुराण का पाठ कर रहा है और उत्तम पात्र है इसलिए अपना कल्याण करने के लिए इसका शास्त्र सुनकर इसे अपना धन दे डालना चाहिए।।34।।

अपने हृदय में यही विचार कर वह सर्प अपने बिल से निकला और पुराण समाप्त होने के बाद उसने उस ब्राह्मण को एक सोने का सिक्का दिया।।35।।

उस सोने के सिक्के के मिल जाने से वह ब्राह्मण बहुत ही प्रसन्‍न हुआ और उसकी प्राप्ति के लोभ से प्रतिदिन प्रातःकाल आकर ऊँचे स्वर से पुराण का व्याख्यान करने लगा।।36।।

तथा वह सर्प भी प्रतिदिन पुराण सुन-सुनकर एक एक सोने का सिक्का प्रतिदिन देने लगा। इस प्रकार उस सर्प की सेवा करते हुए उस ब्राह्मण का बहुत सा समय व्यतीत हो गया।।37।।

किसी एक दिन वह सोमशर्मा ब्राह्मण किसी काम के लिए दूसरे गाँव को गया और पुराण सुनाने तथा सर्प के द्वारा दिये गये सोने के सिक्के के लेने की सब बात अपने पुत्र को समझा गया।।38।।

वह ब्राह्मण उस पुत्र को यह भी समझा गया कि हे पुत्र यह बात छिपी हुई रखना किसी के सामने कहना मत। इस प्रकार सरल हृदय से समझाकर वह ब्राह्मण दूसरे गाँव को चला गया।।39।।

अपने पिता की आज्ञानुसार उस ब्राह्मण के पुत्र देवदत्त ने भी वहाँ जाकर और पुराण की पुस्तक लाकर सुनाई। तथा वह सर्प भी उस पुराण को सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुआ और उसे एक सोने का सिक्का दिया।।40।।

उस सोने के सिक्के को लेकर वह ब्राह्मण का पुत्र अपने घर गया और उसने वह सब वृतांत अपनी माता को सुना दिया। उसकी माता बड़ी लोभिनी थी इसलिए उसने यह बात सुनकर अपने पुत्र से कहा कि इस सर्प के बिल में व बिल के नीचे बहुत सा धन है इसलिए तू इसको मारकर सब धन निकाल ले। प्रतिदिन के इस व्यर्थ के परिश्रम से क्या लाभ?।।41-42।।

वह मूर्ख देवदत्त माता की इस बात को सुनकर वैसा ही करने के लिए तैयार हो गया। और उस सर्प को मारने की इच्छा से उसी स्थान पर पहुँचा।।43।।

जब वह सर्प का ब्राह्मण के पुत्र का व्याख्यान सुनकर लौटा, और जिस समय वह अपने बिल में घुस रहा था, उसी समय ब्राह्मण ने तलवार की चोट से उसको मार दिया।।44।।

परन्तु उस सर्प का आयु कर्म बाकी था इसलिए वह मरा नहीं। उसकी पूँछ ही कटने पाई थी, और वह जीता हुआ ही बिल में घुस गया था सो ठीक ही है, क्योंकि आयु कर्म के बाकी रहने पर विघ्न भी सब नष्ट हो जाते हैं।।45।।

उस तलवार से जिसकी पूँछ कट गई है, ऐसा वह सर्प इस प्रकार विचार करने लगा सो ठीक ही है। क्योंकि क्षमा धारण करने पर भी सर्प के नेत्र लाल रहते हैं, फिर यदि वह क्रोध से क्रोधित हो तो फिर कहना ही क्या है? वह विचार

करने लगा कि मैं तो इस ब्राह्मण को प्रतिदिन द्रव्य देता था फिर भी इस पापी ने मेरे साथ यह क्या दुष्टता की? इस संसार में ऐसा कोई बुरा काम नहीं है जिसे ये लोभी ब्राह्मण न करें।

भावार्थ- ये लोभी ब्राह्मण सब बुरे काम कर डालते हैं। यदि ये ब्राह्मण सब वर्णाश्रमों का अभ्यास भी कर लें तो भी ये लोग ऐसे-ऐसे बुरे कार्य कर सकते हैं जिन्हें चांडाल भी नहीं कर सकते। सो ठीक ही है क्योंकि ये ब्राह्मण स्वभाव से ही लोभी होते हैं। इस प्रकार विचार कर उस सर्प ने मार्ग में जाते हुए उस ब्राह्मण को काट लिया जिससे वह मरकर पाप कर्म के उदय से दुर्गति में पहुँचा। सो ठीक ही है, क्योंकि जो कार्य बिना विचारे किया जाता है उसको भी बार-बार धिक्कार है।।46-49।।

कुछ काल बीत जाने पर सोमशर्मा ब्राह्मण भी अपने घर आया और अपने पुत्र के मरने के समाचार सुनकर शोक से बहुत ही दुःखी हुआ।।50।।

तदनन्तर वह विचार करने लगा कि शरीर को जलाने वाले इस शोक के करने से क्या लाभ है? यदि मनुष्यों के पास बहुत सा धन हो तो वह विवाह कर दूसरी स्त्री ला सकता है तथा धन से खरीद कर अनेक प्रकार के पौष्टिक रस खा सकता है और इस तरूण स्त्री के साथ उपभोग कर अनेक उत्तम पुत्र प्राप्त कर सकता है।।51-52।।

इसलिए उत्तम मनुष्यों को धन कमाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस संसार में स्त्री पुत्रों की चिंता करना सर्वथा व्यर्थ है।।

यह विचार कर वह ब्राह्मण उस खेत पर आया और पुस्तक खोलकर उसका अर्थ कहने लगा। उसे सुनकर वह सर्प भी आया और खाली हाथ आकर इस ब्राह्मण के सामने बैठ गया।।54।।

अन्त में उस ब्राह्मण ने सर्प से कहा- हे मित्र! आज तूने सोने का सिक्का क्यों नहीं दिया? ब्राह्मण की यह बात सुनकर उस सर्प ने यथायोग्य उत्तर दिया- हे ब्राह्मण तू जीता हुआ घर को जा, तू मेरा गुरु है इसलिए तू मेरे लिए अराध्य है

मारने के योग्य नहीं है। भला विचार तो कर कि जब हृदय में अन्तर पड़ जाता है तब भला प्रेम किस प्रकार रह सकता है? इस प्रकार उस सर्प ने कहा।।55-56।।

वह ज्योतिषी देव विचार करने लगा कि उसी सर्प के समान इस समय मेरी गति हो रही है। तदनन्तर उस ज्योतिषी देव की विपरीत बुद्धि फिर भी उस सुभौम के मारने के लिए उत्पन्न हुई। उस देव ने अपनी माया से फिर उसी फल देने वाले वैश्य का रूप धारण कर लिया और फिर राजा से कहने लगा कि आप तो मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ। मैं तो आपकी परीक्षा लेने के लिए आया था, भला मैं आपका अनिष्ट कैसे कर सकता हूँ? यदि मैं आपका कोई अनिष्ट करूँ तो मुझे स्वामी द्रोह (स्वामी के साथ शत्रुता करना स्वामी का घात करना) का महापाप लगेगा। तथापि इस समय आपको मुझ सेवक का भी एक काम कर देना चाहिए। इसके उत्तर में राजा ने पूछा कि वह कौन सा काम है तब पाप करने में अत्यन्त निपुण ऐसा वह देव कहने लगा।।58-60।।

कि ''आप इस तख्ते पर नमस्कार मंत्र को लिखिए और फिर अपने ही बायें पैर के तलवे से घिसकर मिटा दीजिए।।61।।

हे राजन् ! यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं आपको जीता हुआ छोड़ दूँगा अन्यथा मैं आपको जीता हुआ नहीं छोड़ सकता। वह चक्रवर्ती सम्यक्त्व रहित था और मरने के भय से भयभीत हो रहा था। उसने उस देव की बात सुनते ही स्वीकार कर ली और उस मूर्ख ने वैसा ही कर दिया तब उस देव ने तलवार से मस्तक काटकर उसको मार डाला। इस प्रकार वह क्रूर ज्योतिषी देव अपने पहले जन्म के बैर के सम्बन्ध से उस सुभौम चक्रवर्ती को मार कर अपने स्थान को चला गया। सो ठीक ही है क्योंकि शत्रुओं से सम्बन्ध रखना भी अत्यन्त दुःख देने वाला होता है।।62-64।।

इस संसार में बैर व शत्रुता का सम्बन्ध क्षण भर रहता है परन्तु वह अनंत भवों तक दुःख देता है, यही समझ कर विद्वान मनुष्यों को किसी भी जीव के साथ शत्रुता नहीं करनी चाहिए।।65।।

उस राजा सुभौम ने भी रौद्रध्यान में लीन होकर प्राण छोड़े थे इसलिए वह मरकर नरक में पहुँचा और वहाँ पर तीव्र दुःखों का अनुभव करने लगा।।66।।

देखो लोभ के कारण राजा सहस्रबाहु अपने पुत्र के साथ मरकर तिर्यंच गति में पहुँचा था, और हिंसा में तल्लीन होने के कारण जमदग्नि के दोनों पुत्र अधोगति में पहुँचे थे। इसीलिए बुद्धिमान राग द्वेष दोनों को छोड़ देते हैं। क्योंकि इन दोनों का त्याग कर देने से कोई भी आपत्ति नहीं आती और अनुक्रम से परमपद मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।।67-68।।

वह सुभौम चक्रवर्ती का जीव अपने पाप कर्म के उदय से उस नरक में ऐसे-ऐसे दुःख अनुभव करेगा जिन्हें अच्छे-अच्छे चिरकाल तक भी नहीं सोच सकते। इस प्रकार अशुभ कर्मों की निर्जरा कर नरक से निकलेगा और इसी भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में मनुष्य जन्म प्राप्त करेगा। पुण्य कर्म के उदय से बड़ी कठिनता से उत्तम जैनेश्वरी दीक्षा धारण करेगा और ग्यारह अंगों का पारगामी होकर उत्तम तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध करेगा।।69-70।।

अन्त में समाधिमरण धारण कर अहमिन्द्र होगा और वहाँ पर प्रवीचार रहित उत्तम भोगों का अनुभव करेगा। तदनन्तर वहाँ से चय कर इसी भरत क्षेत्र में अवतीर्ण होगा। आगामी उत्सर्पिणी काल के तीसरे समय में वह तीर्थंकर होगा। उस समय उसकी आत्मा विशुद्ध हो जायेगी। इन्द्र आकर जन्म से पन्द्रह महीने पहले से रत्नों की वर्षा करेगा और पंचकल्याणकों का महोत्सव करेगा। तदनन्तर वे तीर्थंकर चारों घातिया कर्मों का नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त करेंगे। और विहार कर भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग का उपदेश देंगे।।72-74।।

अन्त में शुक्लध्यान के द्वारा शेष कर्मों का नाश कर कभी न नाश होने वाली मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त होंगे। ऐसे व होनहार तीर्थंकर अथवा सिद्धों की मैं स्तुति करता हूँ। वे भगवान आज ही हम लोगों का कल्याण करें।।75।।

मैं रत्नचन्द्र नाम का भट्टारक अल्प बुद्धि को धारण करने वाला हूँ, मैंने जो मात्रा स्वर संधि आदि से रहित जो कुछ न्यूनाधिक वर्णन किया है उस सबको विद्वान लोग क्षमा करें।।76।।

इस प्रकार मुझ रत्नचन्द्र नाम के भट्टारक ने आगामी काल में तीर्थंकर पद्वी को धारण करने वाले सुभौम चक्रवर्ती का शुभ चरित्र पहले कहे हुए शास्त्रों के अनुसार वर्णन किया है।।77।।

इस प्रकार आचार्य श्री सकलचंद्र के आज्ञाकारी भट्टारक श्री रत्नचन्द्र विरचित विद्वर श्री तेजपाल की सहायता से निर्मापित तथा खण्डेलवाल जाति के पाटणी गोत्ररूपी आकाश के सूर्य ऐसे सेठ श्री हेमराज नाम के चिन्ह से सुशोभित ऐसे इस सुभौम चरित्र में चक्रवर्ती के नरक में जाने का तथा होनहार तीर्थंकर का वर्णन करने वाला यह सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

अथ प्रशस्ति

इसी मूल संघ के सरस्वती गच्छ में श्री सीमंधर तीर्थंकर के समीप जाने वाले श्री कुंदकुंद आचार्य हुए थे।।1।।

उन्हीं के शिष्यों प्रशिष्यों में पद्मनंदि नाम के मुनिराज हुए थे। वे पद्मनंदि मुनिराज विद्वानों के मान्य थे। तपश्चरण के खजाने थे और भव्य रूपी कमलों को प्रफुल्लित करने वाले थे।।2।।

इन्हीं के पट्ट पर श्री सकलकीर्ति नाम के उत्तम भट्टारक हुए थे। वे जगत के ईश्वर थे और उन्होंने धर्म को खूब ही प्रकाशित किया था।।3।।

उन्हीं के पट्ट रूपी उदयाचल पर सूर्य के समान भुवनकीर्ति नाम के गुरु हुए थे। वे भुवनकीर्ति जनता को आनन्द देने वाले, वन में रहने वाले थे और महा तपस्वी थे।।4।।

उन्हीं के एक गुरुभाई थे उनका नाम रत्नकीर्ति था। वे रत्नकीर्ति सब गणों में मुख्य थे, वृद्ध थे, उनको मंडलाचार्य की उपाधि प्राप्त थी और वे सदा धर्म कार्य करने वाले थे।।5।।

उनके पट्ट पर मंडलाचार्य श्री यशकीर्ति हुए थे जो यश के खजाने थे, तथा अध्यात्म शास्त्र और पुराण शास्त्रों में बड़े ही चतुर थे।।6।।

उन्हीं की आम्नाय में भट्टारक गुणचन्द्र हुए थे, गुणचन्द्र वादियों में उत्तम वादी थे, न्यायशास्त्र में सर्वोत्तम थे और कविता आदि गुणों के उत्तम स्थान थे।।7।।

उन्हीं के पट्ट पर जिनचंद्र विराजमान हुए थे जो बलात्कार गण में मुख्य थे और उनकी वाणी का प्रभाव एकांतवाद को सर्वथा जीतने वाला था ऐसे व श्री जिनचंद्र सदा जयशील हों।।8।।

अत्यंत विभूति को धारण करने वाले उसी पट्टपर भट्टारक श्री सकलचन्द्र हुए थे। वे भट्टारक श्री सकलचन्द्र सिद्धांत शास्त्र के जानकार थे, सज्जनों द्वारा

वंदनीय थे आचार्यों में श्रेष्ठ थे और विद्वान में माननीय थे।।9।।

उन्हीं के पट्टपर श्री रत्नचंद्र विराजमान हुए थे, उनको भट्टारक पद प्राप्त था, वे स्याद्वाद के पूर्ण अर्थ को जानते थे, और विद्वानों में बहुत ही मान्य थे।।10।।

सम्वत् सोलह सौ तेरासी में भाद्रपद शुक्ला पंचमी गुरुवार के दिन यह सुभौम चरित्र पूर्ण किया था।।1।।

प0 पू0 आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज (निर्णय सागर) द्वारा रचित, संपादित एवं (निर्ग्रंथ ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित उपयोगी साहित्य)

1. निज अवलोक 36. यशोधर चरित्र 70. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र